प्रवचन मञ्जूषा

भाग-2

प्रवचनकर्त्री

आर्यिका श्री 105 विज्ञानमती माता जी

प्रकाशक

धर्मोदय साहित्य प्रकाशन

सागर (म. प्र.)

- **कृति** : **प्रवचन मञ्जूषा भाग-2**
- **प्रवचनकर्त्री** : आर्यिका श्री 105 विज्ञानमती माताजी
- **संकलन** : आर्यिका संघ
- **सम्पादन** : सतेन्द्र जैन
- **संस्करण** : प्रथम, मार्च 2011
- **ISBN** : 978-81-910547-7-4
- **आवृत्ति** : 1100 प्रतियाँ
- **मूल्य** : 25/-
- **प्राप्ति स्थान** : धर्मोदय साहित्य प्रकाशन
सागर (म. प्र.)
094249-51771
- **मुद्रक** : विकास आफसेट, भोपाल

अहिंसक के दर्शन से बना अहिंसक

एक मछुआरा अपने कंधे पर जाल टांगकर नदी की ओर जा रहा था। आजीविका का एक ही साधन था, मछलियों को पकड़ना, बेचना और उससे जो पैसा मिले खाद्य सामग्री खरीदकर पेट भरना था। कुछ पैसा बचाकर दूसरे कार्य भी करूँगा। ऐसी नाना कल्पनाएँ करते हुए जा रहा था कि इतनी मछलियाँ पकडूँगा कि बहुत सारे पैसे इकट्ठे करूँगा। जाते-जाते उसे मुनिराज के दर्शन हो जाते हैं। नदी का रास्ता जंगल से होकर ही जाता था। जंगल में मुनिराज विराजमान थे। उनके पास बहुत सारे लोग बैठे थे। कोई सेठ था, कोई धनवान था तो कोई बुद्धिमान था। सभी मुनिराज का उपदेश सुन रहे थे। सच्चे देव, शास्त्र, गुरु के सामने विनय से आदर के साथ जाना चाहिए, चाहे स्त्री हो या पुरुष सभी को सिर ढककर ही जाना चाहिए। वहाँ बैठे हुए किसी सेठ की पगड़ी में सोना जड़ा था तो किसी के कुर्ते में सोने के बटन लगे थे। इतने बड़े-बड़े लोग भी जब उनके चरणों में सिर झुकाये हुए बैठे हैं तो निश्चित कोई बड़े महात्मा होंगे ऐसा सोच रहा था, मैं भी इनके पास जाता हूँ, मैं भी अपने जीवन में कुछ इनसे ग्रहण कर लूँ। उपदेश होने के बाद सभी चले जाते हैं। वो धीरे से साहस जुटाकर जाल एक तरफ रखकर मुनि के चरणों में पहुँच जाता है। हे स्वामी! मुझे भी कुछ उपदेश दो-मुनिराज कहते हैं - ''हिंसा सबसे बड़ा पाप है।'' हिंसा के होने पर अन्य चार पाप स्वयमेव हो जाते हैं। हमारे प्रत्येक काम में हिंसा होती है। एक कागज भी इधर से उधर करो तो हिंसा होती है। हम बैठते समय नीचे देखकर नहीं बैठते हैं तो छोटे-छोटे जीवों पर अपना 50-60 किलो का वजन पटक देते हैं। कम से कम एक बार तो आँख उठाकर देख लो, जीव हों या न हों, देखने से पाप से बच जाओगे। अहिंसा को बताते हुए राजवार्तिककार कहते हैं कि ''अहिंसा धर्म की सुरक्षा के लिए चार व्रत और कहे हैं।'' उसने अहिंसा के बारे में सुना, अहिंसा की महिमा सुनी तो उसे ऐसा

लगा कि मुझे भी पालन करना चाहिए। मुनि कहते हैं कि - तुम क्या करते हो, तब उसने कहा कि मैं नदी पर जाकर जाल बिछाकर मछली पकड़ता हूँ, उन्हें बेचकर जो मिलता है, उससे ही पेट भरता हूँ। मेरी एवं मेरे परिवार की आजीविका इसी से चलती है।

आपके घर में भी आप जाल बिछाते हो, आप तो यही कहोगे नहीं, लेकिन सुनो तुम्हारे घर में भी शिकार होते हैं। पानी एक साथ भरकर टंकी में रखते हो, लेकिन उस पर ढक्कन नहीं होता है। बाथरूम की बाल्टी जो प्रायः आधी भरी रहती है और खुली भी रहती है। जाल का क्या अर्थ - जिसमें कोई भी जीव जंतु आकर मर जाये। बाल्टी खुली रखी है तो मच्छर, मक्खी, चींटी यहाँ तक कि छिपकली, चूहे आदि भी गिरकर मर सकते हैं। जीव गिरे या न गिरे, मरे या न मरे लेकिन हमने तो जाल बिछा ही दिया था। प्रमाद वृत्ति कर ही ली। कहा भी है ''**प्रमत्तयोगात् प्राण व्यपरोपणं हिंसा**'' प्रमाद-पाँच इन्द्रिय के विषयों के कारण, विकथा के कारण, प्रेम के वशात्, हम जीवों की हिंसा करते हैं। जीवों को मारना, काटना, पैर से कुचलना हिंसा है। भले ही तुमने मारा नहीं, लेकिन देखकर नहीं रखा तो पाप लगेगा ही लगेगा। मछुआरा जाल फैलाता है तो मछली फँसे न फँसे लेकिन मछलियों को मारने का पाप लगता है, क्योंकि हिंसा का साधन है। सबसे ज्यादा पाप घर के मालिक को और उपयोग करने वाले को छटवाँ अंश लगता है। घर में तली चीज बनाते हैं। तेल में तलते हैं तो बाद में कुछ तेल/घी बच जाता है तो सोचते हैं कि शाम को बनाना ही तो है, वैसा का वैसा कढ़ाई में रख देते हैं। तब उसमें सैकड़ों मच्छर, मक्खी, चींटियाँ आकर गिर जाती हैं और हम शाम को देखते हैं तो उनको निचोड़कर उस तेल का उपयोग कर लेते हैं। उसमें बाहर खून तो नहीं दिखता है, लेकिन सप्त धातु वाला शरीर है। दया परिणाम रखो, उसी समय ढ़ककर रखना चाहिए या डिब्बे में वापस रखकर ढक्कन बंद कर दो और कढ़ाई साफ करके रख दो। ताकि अहिंसा धर्म का पालन हो जाये। सबसे अधिक हिंसा घर में ही होती है। घर में ही इस प्रकार के काम होते हैं। यह भी एक प्रकार का शिकार है, हमने जीवों को मारने के साधन उपलब्ध कराये हैं। जीवों को वेदना

भण्डार में डाल देते हैं। मंदिर में ऐसी व्यवस्था रहती है, आफिस वालों के लिए या कोई दुकान से या कहीं काम करते-करते मंदिर जाता है, तो उनको ये व्यवस्था अच्छी रहती है। घर से द्रव्य लेकर जाने में असंख्यात गुणी निर्जरा होती है। एक लड़का एक दिन प्रायश्चित लेने आया कि मैं मंदिर जाना भूल गया। पूछा तो कहता है-चावल ले जाना भूल गया था, जाते समय एक मित्र की दुकान पर बैठ गए। एक घण्टा तक बातें करता रहा और वहाँ से आकर भोजन कर लिया, बाद में याद आया कि मैं तो आज मंदिर गया ही नहीं। हाथ में चावल होते तो एक घण्टा तक बातें करने के बाद भी मंदिर चला जाता। वो चावल मंदिर जाने की याद दिलाते रहते हैं। घर से द्रव्य लेकर जाओ तो लोगों को भी समझ में आ जाता है कि पूजन करने जा रहा है। आप यदि यह सोचो कि द्रव्य धोने में, पानी भरने में, प्रासुक करने में समय लगेगा, उतने समय में दुकान के 4 ग्राहक निपटाता, विचार करो वो ग्राहक आते कहाँ से हैं? धन आता कहाँ से है? तुम पूजन करोगे सभी धार्मिक कार्य करोगे तो पुण्य मिलेगा, उस पुण्य से ही धन मिलता है। उस लड़की को देखकर राजकुमार मोहित हो जाता है। मन में ऐसा विचार आता है, इसको प्राप्त किए बिना जीवन निस्सार है। राजकुमार बनना भी व्यर्थ है। उसको देखते ही उसे काम ज्वर आ गया। नाना प्रकार के ज्वर आते हैं। शीत ज्वर, वात ज्वर, मलेरिया आदि ये सभी तो नाड़ी में थर्मामीटर में आ जाते हैं। लेकिन काम ज्वर नाड़ी में, थर्मामीटर में नहीं आता है। शरीर इतना तपता है कि पतली रोटी भी सेक लो लेकिन थर्मामीटर में नहीं चढ़ता है। सभी प्रकार के ज्वर मंत्र-तंत्र, औषधि आदि से ठीक हो जाते हैं, लेकिन काम ज्वर किसी भी औषधि से, मंत्र-तंत्र से, जाँचादि करवाने से ठीक नहीं होता है। यह मन में होता है, इसकी औषधि उसकी प्राप्ति है। वह प्राप्त हो जाये तो ठीक, नहीं तो मूर्च्छा आने लगती है, यहाँ तक की मर भी सकता है। वह भी काम ज्वर से पीड़ित होकर महल में जाकर पलंग पर गिरता है। लेकिन लगी नहीं, बाकी कहीं भी गिरे, नदी में, पर्वत में, गड्ढे में लगती है। क्योंकि उसे मानसिक संताप हो रहा था, तो नींद नहीं लगी। मंत्री, दास, दासी, रानी आदि सभी चिंतित, आखिर क्या हो गया? राजा के पास भी समाचार

पहुँचे, राजा कहता क्या हो गया, उसके मित्रों से पूछा बताओ तुम्हें मालूम है क्या हुआ? मित्रों ने कहा, नहीं; तब उन्होंने पुनः कहा जाकर पूछो पता लगाओ, क्या हुआ है। मित्रों ने जाकर खुशामद करके पूछा तो पता चलता है। उसे धर्मात्मा सेठ की लड़की चाहिए, वो नहीं मिले तो 2-3 दिन में मर सकता है। सभी सोचते हैं, उस सेठ की लड़की का मिलना मुश्किल है। राजा को बताया तो राजा सोचता है, राजकुमार इतना व्यसनी है, उसे वो नहीं मिल सकती, फिर भी प्रयास करता हूँ। व्यसन का त्याग नहीं है, करते भी नहीं हैं तो फल नहीं मिलता, संकल्प के साथ फल मिलता है।

एक साठ साल का व्यक्ति जिसने कभी जुआ नहीं खेला था, लेकिन त्याग नहीं है। एक बार वह अपने मित्र के साथ व्यापार के सम्बन्ध में एक बड़े शहर में जाता है। जिस दुकान पर काम था, वह बंद थी, वो वहाँ मित्र के साथ दुकान खुलने का इंतजार कर रहा था। तभी देखता है, पास में 8-10 लोग बैठकर ताश खेल रहे थे, उसमें पैसा भी लगा रहे थे, तभी एक ने 50 से 500 जीत लिए, उसने देखा अरे यह तो बड़ा अच्छा है, बिना मेहनत के, बिना दुकान के, झट से 50 से 500 आ जाते हैं और उसने वहाँ पैसा लगाकर खेलना शुरू कर दिया, पैसा लगाता रहा हारता गया, हारते-हारते पैसा नहीं बचा तो वह मित्र से माँगता, तब मित्र कहता है, यह क्या किया तुमने, जुआ खेलने लग गये। टिकिट के पैसे भी नहीं बचे। ऐसा क्यों हुआ क्योंकि उसका संकल्प नहीं था। व्यसनों का त्याग नहीं था। परस्त्री का सेवन करते तो नहीं है, लेकिन त्याग नहीं है तो मन कब किधर किसके ऊपर चला जाए और वासना का ज्वर उठ जाये।

अजमेर में एक 55 साल का व्यक्ति भगवान् की पूजा करता था। दान देता था, चार बेटे थे, बेटियाँ थीं, पत्नी सभ्य सुंदर सुशिक्षित थीं, फिर भी आफिस में एक महिला से प्रेम हो गया और इतना प्रेम कि दोपहर में महिला ने आत्महत्या की तो शाम को उस व्यक्ति ने भी आत्महत्या कर ली, यदि परस्त्री सेवन का त्याग होता संकल्प होता तो कभी ऐसा नहीं होता। सेठ धर्मात्मा था, वो सेठ ऐसे व्यसनी को अपनी बेटी कैसे दे सकता है? राजा सोचता है, नहीं दे

जो धार्मिक कार्यों में सहयोग दे, धर्म के मार्ग पर लगा देता है। पतन से निकालकर जीवन को उन्नत बनाने में सहयोग दे। विपत्तियों से बचा ले, रक्षा करे वो मित्र है। आजकल के मित्र ऐसे होते हैं, जो नियम ही तुड़वा देते हैं, अधिकतर नियम मित्रों के बीच में ही टूटते हैं।

आष्टा में पिच्छी परिवर्तन के समय मित्रों के ग्रुपों में 48 नवयुवकों ने पूजन का नियम लिया था। मित्रता अच्छी थी, एक मित्र ने लिया तो सभी ने ले लिया। वो सेठ भी सोचता है अपने मित्र के यहाँ गर्भवती पत्नी को छोड़ दूँगा, क्योंकि प्रातः होते ही राजा खोज करेगा और मुझे तो जरूर खोजेगा। कुछ देर बाद मित्र के घर पहुँच की उससे कहता है, तुम अपनी भाभी को प्रसूति के समय तक रखो, ये रत्न हैं इनसे इनका सारा खर्च निकल जायेगा। मैं बेटी को लेकर आगे जा रहा हूँ। मित्र कहता है मित्र चिंता की बात नहीं है, पैसे की भी बात नहीं है, मैं इतना कर लूँगा। तुम प्रसन्नता से जाओ प्रसूति का सारा काम मैं शांति से करवा दूँगा। समय निकलता गया। एक दिन सेठ ने श्रावक का कर्त्तव्य किया साधु-संतों का पड़गाहन किया। उसके यहाँ पर दो मुनिराज का एक साथ पड़गाहन हुआ, आपके जैसा नहीं कि रोज पड़गाहन ही नहीं करें, अरे जब साधु मिले तो भक्ति नहीं की, आहार नहीं दिया, जब चले जायेंगे तो समझ में आयेगी दुर्लभता। उन महाराजों का एक साथ जाने का नियम था। एक साथ ही सेठ के यहाँ पड़गाहन हुआ। तीन प्रदक्षिणा देकर घर में प्रवेश करवाया, उच्चासन पर बैठाया, पाद प्रक्षालन किया, पूजा की फिर मन शुद्धि, वचन शुद्धि, काय शुद्धि बोली। तुम कहते हो काय की शुद्धि अर्थात् मालूम ही नहीं है कि शुद्धि किस प्रयोजन से बोल रहे हैं। शुद्धि बोलने का मतलब क्या है ? कुछ भी मालूम नहीं, कई बार तो शुद्धि बुलवाना पड़ती है और पूछो तो आप तो आहार ले लीजिए अर्थ क्या है, कुछ जानकारी करने की आवश्यकता नहीं है। शुद्धि का अर्थ मालूम नहीं है, इसीलिए तो रत्नवृष्टि नहीं होती है। पंचाश्चर्य नहीं होते हैं। उसने थाली दिखायी, दाता के सात गुणों के साथ आहार करवाया। श्रावक को इतनी जानकारी तो होना चाहिए कि कब किस मौसम में क्या देना चाहिए ताकि साधु की रत्नत्रयाराधना ठीक चलती रहे। निरंतराय आहार हो

गया। अंतराय आने पर अंतराय का दुःख नहीं वरन् हमसे हो गया था, हमारे घर पर हो गया, उसका दुःख है या फिर हम नहीं दे पाये। इसका दुःख होता है। जबकि दुःख होना चाहिए कि साधु की रत्नत्रयाराधना में विघ्न हो गया। आहार होने के पश्चात् छोटे मुनिराज ने कहा, कैसा पापी जीव आया है कि घर से बाहर निकलकर आना पड़ा, पति से दूर होना पड़ा। तभी बड़े मुनिराज कहते हैं, पापी नहीं पुण्यात्मा जीव आया है, यहाँ का राजा बनेगा। सेठ ने सुना तो सोचता मेरे टुकडों पर पलने वाली का बेटा राजा बने और मेरा बेटा इसका नौकर ऐसे कैसे हो सकता है? मन में ईर्ष्या परिणाम जाग्रत हो गए, उसने सोचा इसको तो मैं जन्मते ही मार दूँगा। बैर परिणाम हो गया फिर भी उसने गर्भपात की नहीं सोची। विष आदि देकर मारने की नहीं सोची।

आखिर उस जीव ने इतनी मछलियाँ मारी थीं, खायी थीं, पाप किया था, पाप की आलोचना भी नहीं की थी, प्रायश्चित भी नहीं किया था, वो पाप तो फलीभूत होगा ही, घर में सफाई की, झाड़ू लगायी है, रोटी बनायी है तो उसका प्रायश्चित कर लेना चाहिए। भोजन बनाने का प्रायश्चित है, साधु का पड़गाहन कर लो। साधु आये न आये तो भी तीन कम नौ करोड़ मुनिराज को आहार दान देने का फल मिलता है। पूरा पाप भी समाप्त हो जायेगा।

समन्तभद्र स्वामी ने रत्नकरण्डक श्रावकाचार में कहा है-गृहस्थी के काम से उत्पन्न कर्म अतिथि की पूजा करने से, आहार देने से उसी प्रकार नष्ट हो जाता है, जिस प्रकार कपड़े पर लगा खून का दाग पानी से धोने पर समाप्त हो जाता है। पुराने जमाने में सभी घरों में पड़गाहन होता था, आज है कि दो तीन घरों में ही पड़गाहन करते हैं।

घर में झाड़ू लगाने का पाप, मंदिरजी में जाकर झाड़ू लगा दी तो धुल जाता है। घर की सात मंजिल भी साफ की है और मंदिर का एक कमरा/हाल साफ कर दिया तो पाप समाप्त हो जायेगा। नौकरों से पाप करवाने में भारी पाप का अर्जन होता है। नौकर विवेक नहीं रखता, मात्र पैसे के लिए करता है। स्वयं करने में जो पाप लगता है, उससे अधिक पाप नौकर से काम करवाने में लगता

है। संकल्प लेते ही मन की आवाज और आत्मा की आवाज दोनों ही आती हैं, जो पावर वाला होता है उसकी चल जाती है। मन ताकत वाला नहीं है तो संकल्प टूट सकता है और यदि आत्मा की ताकत अच्छी रही दृढ़ता रही तो संकल्प सही-सही चलता रहता है। आत्मा की जीत हो जाती है और कल्याण हो जाता है और यदि मन की चल जाती है तो संसार की वृद्धि होती है। संसार भ्रमण बढ़ जाता है। जिस समय ऐसी विपत्ति आये तो उस समय नरक-तिर्यंचों के दुःख याद करो, महापुरुषों को याद करो। जैसे-शारीरिक बीमारी होने पर (सिरदर्द, पेट दर्द, बुखार) दवाई बैग में रखते हो, वैसे मानसिक बीमारी के कष्ट में महापुरुषों के आदर्श को अपने दिमाग रूपी बैग में रखना चाहिए। ट्रेन में सफर करते हैं पानी खत्म हो गया। कहीं भी नहीं मिल रहा है और ट्रेन रुक नहीं रही 4-5 घंटे तो क्या करते हो? खिड़की से कूद जाते हो क्या? नहीं, सहन करते हैं, हम मजबूरी से तो सहन कर लेते हैं, लेकिन धर्म के लिए, आत्मा के लिए, सहन नहीं कर पाते हैं। उस समय इन सब बातों को याद करके भी नियम निभाना चाहिए। उस मछुआरे का भी संकल्प था दया नहीं थी, फिर भी आत्मा की ताकत का प्रभाव यह हुआ कि सेठ के यहाँ (मनुष्य भव पाकर) आ रहा था और राजा बनेगा। एक क्षण की विशुद्धि असंख्यात ही नहीं, अनंत पाप को भी समाप्त करने वाली है। संक्लेश परिणाम के माध्यम से एक क्षण में ही 70 कोड़ा-कोड़ी सागर मिथ्यात्व की स्थिति बाँध लेता है। लेकिन जब उदय में आती है तो एक समय में एक ही स्पर्द्धक आता है, बार-बार भी बाँध तो भी उसी में मिलता जाता है। जैसे दुकान में कमाई करता है तो 1 रुपये, 5 रुपये, 100 रुपये करके कमाता है, लेकिन जब खर्च होता है, एक साथ 500, 1000, लाख रुपये भी खर्च हो जाते हैं, पावर फुल निमित्त पाकर/शादी आदि कार्यक्रम आ गये तो ऐसा हो जाता है। पानी की टंकी एक साथ भरी लेकिन खाली करते हैं तो टोंटी खोलने पर भी क्रम से ही निकलता है। पूरी एक साथ खाली नहीं होती है। ऐसे ही जिनेन्द्र भगवान् के दर्शन किए और एक क्षण में मिथ्यात्व का ढेर समाप्त हो जाता है। अनंतकाल का मिथ्यात्व भी क्षण मात्र की विशुद्धि से अनंतकाल तक के लिए समाप्त हो जाता है। ये विशुद्धि की ताकत है। एक

बार छापा पड़ा तो करोड़ों की सम्पत्ति क्षण भर में समाप्त हो जाती है।

एक बार भावपूर्वक मुनिराज के दर्शन किए, आहार दिए और पूरा मिथ्यात्व समाप्त हो गया। भरत चक्रवर्ती के 923 पुत्र निगोद से आये और दीक्षा लेकर एक अंतर्मुहर्त में तपस्या करके मोक्ष चले गए। विशुद्धि में इतनी ताकत होती है। उसने भी जीवन भर पाप किया, लेकिन अंत में एक संकल्प लिया उसकी ताकत इतनी कि सारा पाप समाप्त हो गया है। गर्भ में भी निमित्तज्ञानी मुनिराज मिल गये और कहा यह राजा बनने वाला है, इतना पुण्य अर्जित हो गया। मित्र सेठ सुनकर ईर्ष्या से उसे मारने की सोच लेता है। शांति से समय निकलता गया, एक दिन सेठानी ने कहा उसे पेट में दर्द हो रहा प्रसूति का लक्षण दिख रहा है। सेठ को पता चला तो उसे मारने का कार्य प्रारम्भ कर दिया, एक जल्लाद को बुलाया। जल्लाद किसे कहते हैं? जिसे हिंसा से डर नहीं लगता है। पाप से भय नहीं लगता है। जल्लाद से कहता है तुम्हें मेरा एक काम करना है, इतनी गुप्त रीति से करना है कि मैं और तुम दोनों के अलावा कोई तीसरा नहीं जान पाये। तुम्हें जितना धन चाहिए ले लो। एक अशर्फी की थैली पकड़ाता है और मन हो तो दूसरी थैली भी अभी ले लो, लेकिन काम सही गुप्त रीति से होना चाहिए। धन के लोभ में व्यक्ति क्या नहीं करता है। बच्चे को भी मार देता है। शेर, साँप, बिच्छू आदि जहरीले प्राणी के सामने चला जाता है। धन से परेशानी भी हो, तकलीफ हो, दुःख हो तो भी धन चाहिए। धर्म को बेच देता है। धन कमाना वही सार्थक है जहाँ हम शांति से उसका भोग कर सकें। प्रेम से बैठकर प्रसन्नता से भोजन कर लें। मित्र की पत्नी की प्रसूति हो गई, लड़का हो गया, जब उस बच्चे की माँ बेसुध पड़ी थी। तब सेठानी से सेठ बच्चा मंगवा लेता है और कपड़े में ढककर जल्लाद को दे देता है। जाओ बहुत दूर जाना किसी को मालूम नहीं चले, किसी को मालूम चल गया तो मेरी प्रतिष्ठा पर कलंक लगेगा, लोग मुझे हीनता की दृष्टि से देखेंगे। जल्लाद कहता है। आप चिंता नहीं करो, किसी को पता नहीं चलेगा। जल्लाद उस नवजात शिशु को लेकर दूर भयंकर जंगल में चला जाता है और सोचता है, यहाँ कोई नहीं देख रहा है और वह उस बच्चे का कपड़ा हटाकर देखता है तो

नियम तोड़ने वाला और साधु की निंदा करने वाले को कुष्ट रोग होता है। दुर्गति में जाना पड़ता है। पाप करते समय नहीं सोचता ,कभी भी यदि सोच लेता तो पाप से बच सकता है। मंदिर में पूजा करने जाते समय सोचेगा अभी 7 बजे हैं, पानी नहीं आया होगा तो, द्रव्य की थाली नहीं लगी होगी तो, अभिषेक करने वाले नहीं आये होंगे तो, मैं पहले जाकर क्या करूँगा और पुण्य ही मिलेगा लेकिन वहाँ समय खराब होता दिखता है और दुकान जाते समय नहीं सोचता अभी ग्राहक नहीं आयेंगे, अभी बाजार नहीं खुला होगा तो, वहाँ तो यह सोचता है कि मेरी दुकान पहले खुले। पाप काम में कल्पनाएँ नहीं करता है। साधु बनने के लिए कह दो तो वह सोचता है किसी ने आहार नहीं दिए तो, अधिक अंतराय आ गए तो, ठंड में कमरा पैक/बंद नहीं किया तो, गर्मी में कोई ठंडी वस्तु नहीं मिली तो और अनेक साधुओं के उदाहरण देगा कि देखो वो साधु बना तो अब घर पर आना पड़ा। उसकी कोई परिस्थिति होगी वो नहीं दिखेगी। आस-पड़ोस रिश्तेदार, यहाँ तक कि दूर-दूर के लोग समझाने आ जायेंगे। लेकिन शादी के समय नहीं सोचता कि क्या पता लड़का शराबी हुआ तो, जुआरी होगा तो, किसी से लगा हो तो शादी होते ही मर गया तो, बच्चे नहीं हुए तो, बच्चा होते ही मर गया तो, सास ने घर से निकाल दिया तो, पति कमाने वाला नहीं हुआ तो, क्या होगा? लेकिन सम्यग्दृष्टि जीव खोटी कल्पनाएँ कभी नहीं करता है। विषय भोगों को तो तत्काल पकड़ लेता है, लेकिन आत्मकल्याण की कहो तो नाना विचार करता है, जैसी हमारी कल्पनाएँ होती हैं, वैसा ही हमारा भविष्य बनता है।

व्यक्ति भाव से 1000 बार किसी को मारने का विचार कर पाता है, तब कहीं वचन से एक बार कह पाता है। वचन से 1000 बार कहता है तब एक बार काय से कर पाता है। भाव करते ही पाप लगना शुरू हो जाता है। वह सेठ भी उस बच्चे को जिंदा नहीं छोड़ना चाहता है। लेकिन आत्मा कहती है कि वह तो राजा बनेगा, मर नहीं सकता है। जैन संत की वाणी कभी अन्यथा नहीं होती है। फिर निमित्तज्ञानी संत की वाणी झूठी नहीं हो सकती है। फिर भी मन कहता है नहीं वो राजा नहीं बन सकता है। सेठानी ने भी समझाया क्यों

अभी से पीछे पड़े हो। वह अभी का जन्मा है। 20 साल बाद राजा बनेगा, अभी क्यों परेशान होते हैं? छोड़ो उसको। लेकिन सेठ कहता है नहीं, मैं नहीं मान सकता तो सेठानी भी कहती है तुम्हारी मर्जी। अरे धर्मपत्नी हो तो पति को धर्म के मार्ग में लगाओ, शादी की थी तब वचन लिया था कि धर्म भी साथ-साथ करेंगे। धर्म-काम में मना ही लेना चाहिए, विषय भोग में न माने तो कुछ नहीं। वह जल्लाद उसे मार नहीं पाया क्योंकि उसने मछली को जीवनदान दिया था, उस समय उसके मन में भी अनेक विकल्प उत्पन्न हुए थे, लेकिन आत्मा की पुकार उसने सुनी थी, यहाँ भी जल्लाद के मन ने तो कहा था, सेठ ने कहा है, मार दो लेकिन आत्मा स्वीकार नहीं कर पा रही थी। वो सेठ-सेठानी से कहता है। बीज को अंकुरित होने के पहले ही जला दो, उखाड़ दो, तो ताकत नहीं लगती लेकिन वृक्ष बनने पर बहुत ताकत लगानी पड़ती है। इसीलिए इसे अभी समाप्त करूँगा। वह जल्लाद सेठ से आकर कहता है। तुम्हारा काम हो गया, कोई जान नहीं पाया है। वो जीवित कभी भी तुम्हें नहीं मिल सकता है। वहाँ उसकी माँ रो रही थी, मेरा बेटा कहाँ है ? बीमार था, औषधि भी करवायी लेकिन मर गया तो श्मशान घाट ले गया। वो माँ कहती मुझे मरा हुआ ही दिखा दो, एक बार देख तो लेती। बार-बार रोती रहती, फिर चुप हो जाती, फिर रोती ऐसे ही समय निकल गया। शांति हो गयी। वो तीसरा सेठ उस बच्चे को लेकर जा रहा था। मेरा भाग्य खुल गया, बिना पुरुषार्थ के ही बेटा मिल गया, मन में बहुत प्रसन्नता थी, लेकिन आत्मा कह रही थी, तुम खुश हो रहे हो, उसकी माँ रो रही होगी, यहाँ वहाँ ढूँढ रही होगी, मुझे वहीं रख देना चाहिए, हो सकता उसकी माँ भोजन लेने गई हो। फिर सोचता है, मैंने छोड़ दिया और जंगली पशु खा गए तो मैं इसका पालन-पोषण करके पढ़ा लिखाकर अच्छा आदमी बनाऊँगा। ऐसी अनेक कल्पनाएँ करते हुए जा रहा था। थोड़ा चला और फिर सोचता है, मैं लेकर गया और सेठानी ने मना कर दिया तो कहीं वो यह तो नहीं कह देगी कि वापस वहीं रख आओ, क्या पता वो सोचे कि यह बच्चा तुम्हारी दूसरी पत्नी से होगा और यहाँ ले आये। हो सकता है वो कहे कि अच्छा हुआ मेरे बेटा नहीं था, मुझे बेटा मिल गया, प्रसन्नता से गोद में ले लेगी,

एक बार एक व्यक्ति ने 10 उपवास किए और सभी को भोजन करवाया, मावा की मिठाई खिलायी प्रायः सब लोगों को उल्टियाँ हो गयी। हो सकता मावा पहले का रखा हो, उस समय कोई विषैला कीड़ा गिर गया हो या हो सकता है, साँप फूँक गया हो सो ऐसा हो गया। सेठ ने अभक्ष्य नहीं भक्ष्य जलेबियाँ बनवायी। उसके यहाँ सभी मेहमान आने लगे, समाज के सभी लोग एकत्रित हो गए, जुलूस निकाला गया। डेढ़ माह होने पर बच्चे को मंदिर ले जाया जा रहा था। सबसे पहले णमोकार मंत्र क्यों सुनाते हैं ? क्योंकि क्या पता कहाँ से आया है? किस कुल से आया है? अतः आज णमोकार मंत्र सुनाकर जैन बनाते हैं, जैन कुल का बनाते हैं, आगम के अनुसार आठ मूलगुण के संस्कार डाल दिए। 8 मूलगुण, 5 उदुम्बर फलों का त्याग, मधु, माँस, मद्य का त्याग करवाया जाता है। आठ वर्ष तक माँ पिता बच्चे का नियम पलवाते हैं। बाद में उसे समझा देते हैं तो वो स्वयं उसका पालन करते हैं। कभी-कभी लोग सोचते हैं 2 माह का बच्चा क्या समझता है? कुछ नहीं 6 माह का बच्चा भी अपने माता-पिता का व्यवहार समझता है। वो समझता है कि मम्मी-पापा को डांट रही हैं। या पापा मम्मी को डांट रहे हैं।

इतिहास में एक उदाहरण आता है - एक राजा अपने 6 माह के बच्चे के सामने रानी से कामोत्पादक चेष्टा करने लगा तो रानी ने कहा नहीं, यह बच्चा है। राजा ने कहा अभी तो यह क्या समझता है, उस क्रिया को देखकर उस बच्चे ने चादर से अपना मुँह ढक लिया। जब 6 माह का बच्चा, इस बात को समझता है तो क्या और दूसरी बातें नहीं समझ पायेगा। आप सोचते हैं, बच्चे को मंदिर लाने से वह जानता तो है नहीं। अरे नहीं जानता, कुछ लाभ भी न हो तो भी तुम्हारा अपना कर्तव्य तो पूरा हो जायेगा। आप इसीलिए भी नहीं लाते हैं कि कहीं मंदिर में शू-शू कर देगा तो, सावधानी रखना चाहिए और कभी ऐसा हो जाए तो भगवान् से क्षमा माँगना चाहिए। भगवान् तो कुछ नहीं करते लेकिन वहाँ रहने वाले रक्षक देव कुपित हो सकते हैं।

एक बार ऐसा ही हुआ था। पिड़रूआ के मंदिर में एक महिला के बच्चे ने शू-शू कर दी उसने सफाई कर दी, भंडार में पैसे भी डाल दिए लेकिन

भगवान् से क्षमा नहीं माँगी तो रक्षक देव कुपित हो गया। उसका बच्चा बीमार रहने लगा, बहुत औषधि करवाई लेकिन ठीक नहीं हुआ बाद में समझ आया कि भगवान् से क्षमा नहीं माँगी है। फिर उसने वहाँ जाकर क्षमा माँगी तो बच्चा ठीक हो गया। भूल-चूक हो जाये तो भी क्षमा माँग लेना चाहिए। परस्पर में एक-दूसरे से कुछ हो जाये तो, हँसी कर ले, गाली निकल जाये, कठोर वचन भी निकल जायें तो भी क्षमा माँग लेना चाहिए। सेठजी ने भी बच्चे को आठ मूलगुण के संस्कार डलवाये, यदि साधु हों तो साधु से, नहीं तो पण्डितजी या वृद्ध पुरुष से, ये संस्कार अवश्य करवाना चाहिए। रात्रि भोजन का त्याग करवाया है तो मम्मी-पापा अपने हाथ से तो नहीं खिलायेंगे। अभी तुम बच्चे को बाजार के बिस्किट खिलाते हो, जब वह बाद में 20-25 साल का होगा तब उसका तो पाचन तंत्र ही बिगड़ जायेगा। घर में बनाकर अच्छी पैकिंग करके बिस्किट खिलाये जा सकते हैं। बाजार के बिस्किट मैदा के बनते हैं। उनको बनाते समय अण्डे की जर्दी का भी प्रयोग किया जाता है। घर में बनाकर खिलाया तो बच्चा और तुम दोनों पति पत्नी पाप से बच जाओगे। और अभी इस समय डाले गये संस्कार आगे जाकर काम आयेंगे जवानी के जोश में भूल भी जायेगा तो भी आगे समय आने पर अपने आपको सुधार सकता है। यदि माता-पिता बच्चे के सामने रात्रि में नहीं खायेंगे तो बच्चा भी नहीं खायेगा। बाजार के टॉफी-चाकलेट खिलाने की अपेक्षा मौसमी, संतरा, काजू, मुनक्का खिलाना चाहिए, जिससे स्वास्थ्य भी ठीक रहे और धर्म का पालन भी हो, इसी विधि से संस्कार डालना चाहिए।

मंदिर में संस्कार डाले जा रहे हैं। माँ को नियम दिलवाये गये थे, आप भी अपनी बहू को नियम दिलवाए कि कम से कम 8 वर्ष तक रात्रि भोजन अर्थात् अन्न की चीज नहीं खिलाए। और शाकाहारी भोजन करवाए। जैसे भोजन होता है वैसा बच्चों का मन होता है। वास्तव में आज संग्रह वृत्ति कम है, वो सोचते हैं, साथ में कुछ जाना तो है ही नहीं इसीलिए अभी खालो, खिला दो। पहले जमाने में सोने की ईंट बनाकर जमीन में गाड़ दे थे और यहाँ-वहाँ पड़ोस में चला जाता था।

व्यक्ति क्या नहीं करता? सब करता है। जल्लाद जंगल ले जाता है और सोचता है, इस बच्चे ने सेठ का क्या बिगाड़ा है? यह तो इसका मामा है, अभी आया है। बच्चे को क्यों मरवा रहा है? जल्लाद सोचता है, मेरा मन इसको मारने को मना कर रहा है। मुझे पैसे तो मिल ही गये हैं, मैं इसको मारकर पाप का भार क्यों लादूँ? यह तो पुण्यशाली लग रहा है। वह उसे गुफा में ले जाकर छोड़कर आ जाता है। आगे इसका भाग्य है। एक बार किसी को संकल्प पूर्वक मारा तो वह भव-भव में उसे मारता है। वह जल्लाद नहीं मारता है, फिर भी उस पाप का फल तो मिलता है, वह बार-बार मारा जाता है।

दक्षिण में बहुत जगह पर गुफाएँ बनी हुई हैं। वहाँ पर जिनबिम्ब भी है। सबसे बड़ी गुफाएँ एलोरा की हैं। दो मंजिल तक की बनी है। बड़े-बड़े जिनबिम्ब हैं। जिनको देखकर लगता है कि बनाने वाले की भगवान् के प्रति, साधु के प्रति कितनी भक्ति रही होगी, कितना आकर्षण होगा? वह बच्चा भी गुफा में कभी खेलता कभी रोता कभी सो जाता है। वहीं पर गायें चराने के लिए ग्वाला गायें लेकर आता था। उसमें से एक गाय गुफा के अंदर जाती है। गाय उसे देखकर समझ जाती है, यह भूखा है। गाय को भी सम्यग्दर्शन एवं पंचम गुणस्थान भी हो सकता है। स्वयंभूरमण समुद्र में असंख्यात मछलियाँ पंचम गुणस्थान वाली होती हैं। अभी तुम्हें यहाँ समझाया व्रत ग्रहण करने की भावना बनी, लेकिन ग्रहण नहीं कर पाये और समुद्र में नहाते-नहाते या पानी में आनंद मनाते-मनाते आयु बंध हो गया तो मछली बन जाओगे, आयु बंध का कोई भरोसा नहीं, कब हो जाए ?

एक महाराज थे, वे मंदिर में बैठे थे। किसी ने आकर खरबूजा चढ़ाया, उसमें से खुशबू आ रही थी, महाराज का घ्राणेन्द्रिय का विषय बन गया। उसी समय आयु बंध हो गया, उन्होंने बाह्य में बहुत अच्छी समाधि की, परन्तु उनकी समाधि के पश्चात् एक अवधिज्ञानी मुनिराज आये उनसे श्रावकों ने पूछा हमारे यहाँ महाराज ने बहुत अच्छी समाधि की, वो कहाँ गये होगें? तब उन्होंने बताया जो यह खरबूजा चढ़ा है, उसमें कीड़ा बने हैं। इसीलिए मंदिर में कभी भी सचित्त फलों को या ऐसी वस्तुयें नहीं चढ़ाना चाहिए। वे मछलियाँ

वहाँ रहती हैं, उन्हें स्वर्ग के देव आकर बताते हैं, तुमने ऐसा-ऐसा धर्म किया या तुम्हारी ऐसी भावना थी, सुनकर उनको जातिस्मरण हो जाता है और सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेती हैं। व्रतों को धारण कर लेती हैं। **पंचम गुणस्थान** वाली बन जाती हैं। उन्हीं से तो स्वर्ग की सीटें भरती हैं। वह गाय देखती है, भूखा है और वह उसके मुँह पर ही दूध झरा देती है, बच्चा कुछ दूध पी लेता है, कुछ यहाँ वहाँ गिर जाता है। वह बच्चा पेट भर जाने से फिर खेलने लगता है। भूख लगती है तो मुँह को चाट लेता है। दूसरे दिन फिर गाय सुबह, दोपहर, शाम दूध पिलाती है, ऐसे तीन दिन हो गये। गाय घर जाकर दूध नहीं देती तो उसके मालिक ने ग्वाले से कहा - गाय दूध क्यों नहीं दे रही है तो ग्वाला कहता मुझे मालूम नहीं है, मैं आज पता लगाऊँगा। ग्वाला गाय के पीछे-पीछे जाता है, गाय गुफा में जाती है, देखता है, अरे यह तो बच्चे को दूध पिलाती है। बड़ा पुण्यशाली लग रहा है। है भी पुण्यात्मा जब तो गाय दूध पिला रही है। सोचता है किसका है, क्या पता है? लेकिन मेरे भी तो बेटा नहीं है। मैं इसे अपने घर ले जाता हूँ और वह उसे उठाकर अपने घर लेकर जा रहा है।

संसार में रहते हुए प्राणी कितनी भी सावधानी से काम करे, हिंसा हुए बिना नहीं रह सकती है। प्रत्येक गृहस्थ के जीवन में प्रातःकाल से लेकर सायंकाल तक के प्रत्येक काम में हिंसा होना, निश्चित है। हिंसा के बिना संसारी प्राणी संसार में जी नहीं सकता है। लेकिन एक ऐसी हिंसा जिसे बुद्धि पूर्वक करता है, एक ऐसी जिसे न चाहते हुए भी हो जाती है। एक ऐसी जिसे करना पड़ती है। एक ऐसी जिसे बुद्धि पूर्वक विवेक के साथ नहीं चाहता है, नहीं करता है फिर भी हो जाती है।

आचार्यों ने चार प्रकार की हिंसा बताई है। संकल्पी हिंसा, आरंभी हिंसा, उद्योगी हिंसा, विरोधी हिंसा। किसी भी जीव को संकल्पपूर्वक मारना **संकल्पी हिंसा** है। घर में सफाई करते समय भोजन बनाने की सामग्री एकत्रित करते हुए चूल्हा जलाने में, पानी भरने में जो हिंसा होती है, उसे **आरंभी हिंसा** कहते हैं। अपने प्राणों की रक्षा करने के लिए किसी को मारना या मारने वाले को मारना **विरोधी हिंसा** है। जीविकोपार्जन के लिए व्यापार में जो हिंसा होती

नहीं आता है। तीसरी बार आने का साहस भी नहीं करता है। ऐसे ही असातावेदनीय कर्म के उदय से बुखार आया और तुमने उसका स्वागत नहीं किया और सोच लिया यह तो शरीर में हो रहा है आत्मा को तो बुखार आता ही नहीं है। आया है तो जायेगा। तो चला जाता है। पुनः आता है तो फिर सम्मान नहीं, आदर नहीं अर्थात् रागद्वेष नहीं किया तो बंध नहीं हुआ, चला गया। फिर कभी नहीं आता है। जैसे बच्चा को किसी आंटी के यहाँ भेजा, आंटी ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया, सामान भी नहीं लिया तो बच्चा वापस आ जाता है। दूसरी बार मम्मी भेजती है तो बच्चा न नुकर करके जाता है, फिर वैसा ही होता है। आंटी ने इस बार दरवाजा ही नहीं खोला तो बच्चा कहता है, मैं अब कभी नहीं जाऊँगा। ऐसे ही कर्म का उदय आया, खातिरदारी नहीं की तो वापस नहीं आता है। हमें तो बुखार आया नहीं आने जैसा ही लगा और दवाई खा ली तो पुनः पुनः आता है। परेशान करता है। ठंड लगी रजाई ओढ़ ली गर्मी लगी ठण्डक में चले गये, पंखा चला लिया तो और-और लगेगी। जितना-जितना सम्मान उतना-उतना रोग बढ़ता है। कर्म का उदय आता है, उदीरणा के निमित्त मिलाने से उदय भी आता रहता है।

वो बच्चा भी ग्वाले के यहाँ पल रहा था। ग्वाले ने उसे छिपाकर रखा था, किसी को बताया नहीं था, गरीब था, गरीब को अच्छी चीज मिल जाती है तो वह छिपाकर रखता है। सेठ ने डेढ़ माह में ही बता दिया तो बच्चा चला गया। 15 साल का बेटा हो गया। नीति भी है-''अच्छी चीज बताना नहीं चाहिए''। ग्वाला के यहाँ वह इधर-उधर की चीज नहीं खाता था, वरन् घी दूध खाता था, सुंदर तो था ही, पुष्ट हो गया। समय निकलता गया। वही सेठ एक दिन ग्वाले के यहाँ घी खरीदने आता है। ग्वाला कहता है, सेठजी आप बहुत दिन में आये हो कुछ स्वागत करें, वह अपने बेटे को बुलाकर कहता है बेटा गिलास में दूध, दूध में घी डालकर लाओ। सेठजी कहते हैं, तुम्हारा बेटा पहले तो तुम्हारे संतान नहीं थी। ग्वाले ने कहा सेठजी तुम बहुत दिनों में आये हो, तुम्हें पता नहीं, है मैं बाजार से नहीं लाया न ही जंगल से लाया हूँ। फिर भी सेठजी को विश्वास नहीं हो रहा था। जब व्यक्ति एक बात को बताने के लिए

चार बातें करता है तो ऐसा लगता है कि बात सही नहीं है। सेठजी को वही बच्चा लग रहा था, वो कहता नहीं, यह जिंदा नहीं रहना चाहिए। मन में जैसे परिणाम, वैसी ही धारणा बनी रहती है, वैसी ही शंका उठने लगती है। कभी हमारा कुछ गुम जाए और उसे किसी दूसरे के हाथ में देखते हैं तो शंका होने लगती है, कहीं मेरा तो नहीं है और शंका होते-होते पूछ ही लेते हैं। आपने कहाँ से खरीदा उसने नहीं बताया कि वहाँ से या उस दुकान से और कुछ कहता है तो शंका नहीं विश्वास ही हो जाता है कि उसने मेरा ही चुराया है। अरे तुम्हारे जैसा और किसी के पास नहीं हो सकता है? लेकिन शंका इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं। वो सेठ कहता है ग्वाले मुझे यहाँ इसी गाँव में काम है। तुम मेरे कुछ समाचार अपने बेटे के हाथ से मेरे घर पर पहुँचा दो। ग्वालिन का मन नहीं था, लेकिन सेठजी को कैसे मना करें ? वो कहता है, मैं तो भेज दूँगा लेकिन इसकी माँ नहीं भेजेगी, वो इसके बिना नहीं रह पाती है। भोजन भी नहीं करती है, पानी भी नहीं पीती है। उसे बहुत प्रेम है। वो सेठ कहता है अरे तुम पत्नी के लट्टू हो क्या? तुम्हारी नहीं चलती क्या, तुम्हारी बात नहीं मानती क्या, वो कहता है सेठजी ऐसा नहीं है, लेकिन मेरा बेटा कभी घर के बाहर अकेला नहीं गया है। जब भी गया तब माँ के साथ या मेरे साथ ही गया है। फिर इतने भयंकर जंगल में कैसे अकेला जायेगा? शेर, चीता, सांप होंगे, डर नहीं जायेगा। सेठ कहता है, अरे बेटा बड़ा हो गया है। उसे होशियार बनाओ, बाहर अकेला जाने दो, व्यापार सीख जायेगा। इधर उधर की बातें कर करके सेठ ने ग्वाले से हाँ भरवा ली और एक पत्र उसे दे देता है, माँ एक पोटली में पराठा और लड्डू बाँध देती हैं। और कुछ हिदायतें देकर पत्र गले में बाँध कर रवाना कर देता है। वह जा रहा था, मन में सोच रहा था, सेठ के यहाँ जा रहा हूँ। सेठ का बड़ा घर होगा, सौफा होगा, पंखा होगा, नौकर-चाकर होंगे। वहाँ शहर है, शहर कभी देखा नहीं, ऐसी अनेक कल्पनाएँ करते हुए चला जा रहा था। चलते-चलते थक गया तो उसने विश्राम करने की सोची, तभी एक बगीचा जहाँ खुशबुदार फूल लग रहे थे। अनेक प्रकार की रंग-बिरंगी फुलवारियाँ खिली हुईं थीं, वह वहीं जाकर बैठता है। पानी पीता है।

सकता है। एक भी जीव को कोई नहीं मार सकता है। घर में भी यदि बच्चा पाप करता है, व्यसन करता है, तो पाप पापा को भी लगेगा क्योंकि उन्होंने ध्यान नहीं दिया। घर में कर्त्तव्य का निर्वाह सही ढंग से किया, फिर भी बिगड़ते हैं तो पाप नहीं लगेगा।

उस वेश्या ने पत्र में विष के स्थान पर विषया कर दिया। वेश्या वही मछली थी, जिसे मछुआरे ने अभयदान दिया था। उसके कारण ही अनजान को देखकर भी उसे अपना लग रहा था अनायास ही प्रेम उमड़ रहा था, अन्यथा ऐसे तो बगीचे में बहुत आते जाते हैं। सभी के प्रति अपनत्व क्यों नहीं? उसके पास जाने का भाव नहीं। पुण्यशाली को देखकर ही मन होता है, वह चलता-चलता सेठ के गाँव पहुँच जाता है, थोड़ी देर ढूँढ़ने पर ही सेठजी का घर मिल जाता है। घर पहुँचते ही वह सेठ के बेटे को सामान देकर पत्र भी दे देता है। बेटे ने पत्र पढ़ा और माँ को बताया कि पिताजी ने लिखा है कि इसे विषया दे देना, देर नहीं करना, मेरा इंतजार भी नहीं करना। माँ कहती - हाँ बेटा, तेरे पिताजी बहुत दिनों से बेटी के लिए वर खोज ही रहे थे यह अच्छा योग्य पुण्यशाली सुंदर वर मिल गया है। इसीलिए सोचा होगा देर नहीं करना, शीघ्र ही शादी कर देना। बेटा और माँ शादी की तैयारियाँ शुरू कर देते हैं।

एक मान्यता सुनी होगी, अपने जिन परिणामों के माध्यम से जीव मरता है, उसको उसी प्रकार का फल मिलता है। अच्छे परिणाम से मरता है तो सद्गति में जाता है। बुरे परिणामों से मरता है तो दुर्गति में जाता है। अच्छे परिणाम मतलब आत्मा के विशुद्ध परिणाम हो तो सद्गति हो जाती है। आगम में पाँच प्रकार के भाव बताये गये हैं। तुम अपने व्यापार के भाव देखते हो। भाव नहीं देखे, भावों की सही जानकारी नहीं तो व्यापार में सही-सही मुनाफा नहीं हो पायेगा। माल भी सही ढंग से खरीद और बेच नहीं पायेंगे। आचार्य महाराज कहते हैं - "अपने भी सुबह से शाम तक कैसे-कैसे भाव होते हैं, देखा करो" हमारे भाव पाप रूप हो रहे हैं या पुण्य रूप हो रहे हैं। कभी-कभी टी.व्ही. में सीरियल आदि देखकर अच्छा लगता है। आनंद की अनुभूति होती है। फिर भी वो अच्छे भाव नहीं हैं, क्योंकि वे भाव नहीं है, क्योंकि वे भाव भोगों की तरफ

ले जाने वाले हैं। कभी-कभी घर में सभी काम अच्छा हो जाये। जैसे-दीपावली में मिठाई बनायी तो बहुत अच्छी बन गई, खुश होते हैं, देखने में वे भाव अच्छे लग रहे हैं, लेकिन वे अच्छे भाव नहीं, क्योंकि ये भाव जिह्वा इन्द्रिय की लोलुपता को पुष्ट करने वाले हैं।

पुरुषार्थसिद्धियुपाय में कहा है कि - यदि जीव अच्छे भाव से मरता है तो सद्गति को पाता है। जिस समय पूजन कर रहा, स्वाध्याय कर रहा है, परिणाम निर्मल हो रहे हैं, उस समय उसे मार देना चाहिए, ताकि सद्गति हो जाये तो आचार्य कहते हैं- जरूरी नहीं, उस समय तो उसके भाव निर्मल हैं, लेकिन जैसे ही उसने देखा, तुम मारने आ रहे हो, परिणाम खराब हो सकते हैं। आप सोच सकते हो, क्या पता मरते समय दु:ख हो गया, पीड़ा हो गयी, वेदना जोर पकड़ गयी, कुछ आड़ा टेढ़ा हो गया तो भाव खराब हो जायेंगे। ऐसा करने वाला भी हिंसा ही कर रहा है। परिणाम एक-एक समय में परिवर्तित होते रहते हैं। एक समय के परिणाम अनंत संसार को बढ़ा सकते हैं तो एक समय के परिणाम अनंत संसार का नाश भी कर सकते हैं।

एक राजा अपने 6 माह के बच्चे को राज्य देकर परम वैराग्य के साथ दीक्षा लेता है। महाराज बनकर ध्यान में लीन थे। जंगल से होकर श्रावक महावीर भगवान् के समवसरण में जा रहे थे। महाराज को ध्यान में देखकर श्रावक आपस में बातें कर रहे थे, देखो यह सब राजपाट को ऐसा ही छोड़कर मुनि बन गया, वहाँ प्रजा इतनी दुखी हो रही है। दूसरे राजा ने चढ़ाई कर दी है, यह यहाँ बैठा ढोंग कर रहा है। बाहर में कुछ भी चंचलता नहीं दिख रही थी, लेकिन मन चंचल हो उठा वह ध्यान में युद्ध करने लगते हैं, युद्ध करते समय उसके पास शस्त्र नहीं बचे, तब वे सोचते हैं, मैं अपने मुकुट से ही शत्रु पर वार करूँ और उनका हाथ सिर पर चला जाता है, देखते हैं अरे मेरे सिर पर तो मुकुट है ही नहीं, मैं तो महाराज हूँ। और वे वापस ध्यान में बैठ जाते हैं। उसी समय राजा श्रेणिक समवसरण में जाकर भगवान् से पूछते हैं, वो ध्यान में लीन महाराज मरकर कहाँ जायेंगे तो भगवान् कहते हैं- सातवें नरक में, थोड़ी देर बाद पूछते हैं तो छटवें नरक में, फिर तो पाँचवे नरक में, फिर तो चौथे नरक में,

के कार्यों में उत्साह नहीं होना। रोटी खाने के भाव हैं या रोटी खाना है और नहीं खाई तो वह प्रमाद नहीं है। वरन् मंदिर जाना है, अभी तो 8 बजे हैं, चले जायेंगे, नहाया धोया कि कुछ और करने लगे, अभी चले जायेंगे यह प्रमाद है। आत्महित का कार्य है और उसमें टालमटोल कर रहा है तो यह प्रमादवृत्ति है।

प्रमाद 15 प्रकार का है। इन 15 प्रकार के प्रमाद के वशीभूत होकर जो भी कार्य करेगा हिंसा हो या न हो, तो भी पाप लगेगा। पाँच इन्द्रियों के वश में होकर उनके विषयों की पूर्ति के लिए काम कर रहा है। कषाय के वश में होकर कर रहा है। चलते समय देखकर चल रहा है, फिर भी पैर के नीचे जीव आ जाये तो हिंसा का पाप नहीं लगेगा, क्योंकि भाव जीव रक्षा के हैं, प्रमाद नहीं है और यहाँ-वहाँ देखता हुआ चल रहा है, काम कर रहा है। तो प्रमाद है और हिंसा नहीं होती है तो भी पाप लगता है।

तीन लोक में 1 से. मी. भी स्थान ऐसा नहीं है, जहाँ जीव नहीं हैं, सर्वत्र जीव ही जीव हैं। जले जंतु, थले जंतु, नभे जंतु सभी जगह जीव हैं। एक शब्द भी बोला तो भी हिंसा हो रही है, मुख्य रूप से प्रमाद के कारण से होती है। शब्द मूर्तिक हैं, पकड़ सकते हैं। शब्द की इतनी तेज गति है कि अटैक भी आ सकता है। गर्भवती का गर्भ भी गिर सकता है, वज्रपात होता है, भयंकर बिजली कड़कती है। शब्द पौद्गलिक हैं। स्पर्श, रस, गंध, वर्ण होते हैं। दुनिया में सभी यह कहते हैं कि शब्द को कैसे पकड़ें और जब बताओ कि कैसेट में क्या है ? 10, 20,100 वर्ष के बाद भी उन शब्दों को सुन सकते हैं, बेच सकते हैं, खरीद सकते हैं। कहते हैं, ''कुल्हाड़ी का घाव भर सकता है, लेकिन शब्द का घाव नहीं भर सकता है'' मुनिराज चल रहे हैं, पैर के नीचे जीव आ गया, मर गया तो हिंसा नहीं होगी, क्योंकि प्रमादवृत्ति नहीं है, पाप नहीं लगेगा। प्रमाद छोड़कर जो कार्य किया जायेगा, वह अहिंसा की कोटि में आयेगा। गृहस्थों की कभी अप्रमत्त अवस्था नहीं होती है। अप्रमत्त अवस्था सातवें गुणस्थान से मानी जाती है। छटवें गुणस्थान में प्रमाद है, निद्रा आने पर स्थावर जैसा हो जाता है। जैसे एकेन्द्रिय वृक्ष, पानी आदि प्रतिकार नहीं कर पाते हैं। वैसे ही नींद में कोई

प्रतिकार नहीं कर पाते हैं। कोई मार दे, पीट दे तो वेदना नहीं होती है। इसीलिए नींद में कभी सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं होती है। केवलज्ञान नहीं होता है, मोक्ष नहीं जा सकता है। क्योंकि प्रमाद है, निद्रा भी एक प्रमाद है। आसन पर बैठे-बैठे कभी केवलज्ञान नहीं, क्योंकि स्पर्श इन्द्रिय का विषय बन रहा है। पाटा किसी के द्वारा बनाया गया है। यह यहाँ से ऐसा बना है, ऊबड़ खाबड़ है या समतल है, आकर्षण हो रहा है। किसी भी बाह्य पदार्थ का आलम्बन ले रहा है, मतलब प्रमाद है। उसके बनने में समरम्भ, समारम्भ हुआ है। मार्बल के पत्थर पर बैठो तो खून का संचालन सही नहीं होता, पैर सुन्न हो जाते हैं, गर्मी में, सर्दी में, अपने मन के पाटा का चुनाव किया है क्योंकि शरीर से ममत्व परिणाम है।

वृषभसेन मुनि ने आठ वर्ष की अवस्था में शिला पर ध्यान किया। परीक्षा कर ली शिला को गरम भी कर दिया तो भी वहीं जाकर बैठे क्योंकि शरीर से ममत्व परिणाम नहीं है। रोज बैठता हूँ तो आज भी वहीं बैठे। सल्लेखना हो न हो, दूसरे स्थान पर बैठते तो प्रमाद आ जाता। यह भी सोच लेते कि 10 साल और तपस्या करते तो लोभ आ गया। यह प्रमादवृत्ति है। प्रमाद के माध्यम से ही, भाव के कारण ही, कर्म में स्थिति-अनुभाग ज्यादा होता है। जैसे भाव होंगे उसके अनुसार ही फल मिलेगा। स्थिति रहने का काल, अनुभाग फल देने की शक्ति। जैसे मेहमान आये उनके प्रति राग परिणाम ज्यादा तो उनको रोकेंगे, अभी नहीं जाने देंगे अटैची छिपा ली, जो खाना है, जैसा खाना है खाओ, खाने के साथ फेंक भी रहा है तो भी रहो। और एक आया जिससे राग परिणाम माध्यस्थ है तो आये हो तो बैठो जा रहे हो तो जाओ। राग नहीं है तो आने के बाद भी अपने काम में लगे रहेंगे। बेटी आयी ननद आयी मेहमान बाजी में अंतर रहेगा। बेटी खर्च भी ज्यादा करवायेगी, फिर भी राग अधिक है। जैसे परिणाम वैसी ही स्थिति पड़ेगी, अनुभाग पड़ेगा। बहुत कठोर कर्म का बंध होगा। बुखार जोर से आया, नहीं उतरा तो अनुभाग ज्यादा है। महीना भर से आ रहा है, सभी डॉक्टर से इलाज भी करवाया तो स्थिति ज्यादा है। स्थिति अनुभाग कषाय से पड़ते हैं। जानकर पाप करता है तो पाप

वृद्ध बारात में आये हैं। लड़की को लाल चुनरी ओढ़ाते हैं, जो खतरा की सूचक है। लड़के को सावधान करती है। चौराहे पर खड़े हो चूक मत जाना, चूक जाओगे तो दुर्घटना भी घट सकती है। लाल चुनरी ओढ़ा दी, मतलब खतरा मोल लिया, लड़का कहता कुछ नहीं है। चुनरी से ही संकेत मिलता है कि सावधानी पूर्वक जीवन की रक्षा करना है। वरमाला के समय दूल्हा शूरवीर बनकर शेरवानी पहनकर तलवार लेकर सैनिक बनकर आता है। संसार में सभी को जीत सकता हूँ, इसीलिए सैनिक की वेशभूषा में पहनकर आया हूँ, लड़की कहती है सबसे जीत सकते हो लेकिन वासना से हार गए हो, मैं तुम्हें हार पहना दूँ, लड़की के सामने घुटने टेक देता है। पुरुष कहीं भी नहीं झुकता है, लेकिन पत्नी के सामने अपनी वासना के कारण स्वयमेव झुक जाता है। छह खण्ड का अधिपति चक्रवर्ती बन गया, पर पत्नी से हार गया, हार पहन ली, लड़का कहता है, मैं भी तुम्हें हार पहनाता हूँ, लड़के के हाथ पर लड़की का हाथ रखा जाता है। लड़के का हाथ कठोर लड़की का कोमल इसीलिए बीच में हल्दी या मेंहदी रखी जाती है। तुम कोमल हो और मैं तुम्हारी कोमलता को अर्थात् प्रेम पूर्वक दुःख नहीं दूँगा, रक्षा करूँगा। लड़के ने संकल्प कर लिया, जीवनभर रक्षा करूँगा।

एक सेठानी सेठजी के मरने के 12 साल बाद भी रो रही थी, उन्होंने जीवन भर का संकल्प लिया था, बीच में क्यों चले गए। सात फेरे, 6 फेरे तक लड़की आगे 7 वें फेरे में लड़का आगे होता है अर्थात् 6 फेरे तक पिता के संरक्षण में थी अब पति की हो गयी। अब पिता को परायी हो गई, अब पिता का आदेश नहीं वरन् पति का आदेश चलेगा। कंगन खोलना, लड़का एक हाथ से खोलता है, लड़की दोनों हाथ से खोलती है। यदि नहीं तो एक झटका देकर भी खोल कर चला जाता है। क्योंकि लड़का उसी भव से मोक्ष भी जा सकता है क्योंकि लड़की उसी भव से मोक्ष नहीं जाती है अतः दो-तीन भव में पुरुषार्थ करके मोक्ष जा सकती है। रंग-रंगीले पानी में या दूध/छाछ में खेल खिलाया जाता है अर्थात् यह संसार भी पंच परावर्तन रूप है, इसमें खेल ही खिलाया जा रहा है। कर्म के माध्यम से आत्मा अपने विकारी परिणाम के कारण (रागद्वेष

से) अब तुम इस संसार में/गृहस्थी में फँस गये हो तो भी अपनी आत्मा रूपी अंगूठी को ढूँढते रहना, कहीं आत्मा चौरासी लाख योनी में गुम नहीं जाये। इस शरीर में आत्मा को ढूँढ लिया तो सारा संसार नमोऽस्तु कहेगा और सिद्ध भगवान् बन गये तो तीन लोक से पूज्य हो जाओगे, यह सभी भारतीय संस्कृति है। ऐसे रहना कि आगे फिर पुनः भाई, बहिन बन जाओ ताकि स्वतंत्रता के साथ आत्मकल्याण कर लोगे।

लड़की की शादी हो गई। शादी होने के बाद भी, जमाई कुछ दिन ससुराल में रुका हुआ था। उधर सेठजी सोचते हैं कि अब तो लड़का मर गया होगा। और उसके मरने से समाज में जो चर्चाएँ फैली थीं, कैसे मर गया क्या हो गया था? सबसे ज्यादा चर्चायें चौराहों पर, बाजारों में, स्कूलों में, मंदिरों में होती है। वो भी समाप्त हो गयी होगी। सेठजी को उत्सुकता भी हो रही थी कि अपने कानों से सुन लें तो संतोष हो जाये। किसी को भी मारना या बचाना अपने या किसी के हाथ में नहीं है। यह तो उसके पूर्वोपार्जित कर्म का फल है। पुण्य का उदय है तो कोई भी नहीं मार सकता है। और पाप का उदय है तो कोई बचा नहीं सकता है। इतनी बड़ी सड़क पर छोटी सी चींटी भी अधिक ट्राफिक में बच जाती है। और कुत्ता, बंदर, सुअर, यहाँ तक कि आदमी भी मर जाते हैं। आयु कर्म बाँधा है। अनुभाग शक्ति प्रबल है तो वह नहीं मर सकता है।

एक व्यक्ति भयंकर कार दुर्घटना में भी बच जाता है और एक गाड़ी से गिरते ही मर जाता है। एक व्यक्ति तीन मंजिल से गिरा तो भी कुछ नहीं हुआ और एक को छींक आयी तो तड़क आ गयी हड्डी टूट गयी। यह सभी पूर्वोपार्जित कर्म का फल है। पुण्य पाप का फल है। यदि दुःख अच्छा लगता है तो पापात्मक व्यसनादि कार्यों को करो। धर्म कोई वस्तु नहीं वरन् आत्मा की भावात्मक परिणति है। इसी भावात्मक परिणति के माध्यम से कर्मबंध की व्यवस्था चल रही है। कर्म समाप्त तो संसार समाप्त। कर्म हैं तो सुख-दुःख वेदना संसार में दिखती हैं कर्म नहीं हैं तो किसी को दिखेंगे भी नहीं। सेठजी को देखते ही जमाई पैर छूता है, आशीष माँगता है। सेठजी आश्चर्यचकित हो गये, अरे ये क्या हो गया? यह वही है, चाल-चलन से, शारीरिक हष्ट-पुष्टता से तो

कुंवर साहब आप इस समय कहाँ जा रहे हो? वह पिताजी द्वारा कही बात बता देता है तो वह कहता है लाओ थाल लेकर मैं जाता हूँ, तुम्हें पूरा रास्ता भी नहीं पता है मुझे रास्ता भी मालूम है और पूजा की विधि भी। मैं करके आता हूँ। तुम जाओ जाकर आराम करना, वह सोचता है, भाई साहब कह रहे हैं, बड़े हैं, इनको मना कैसे करूँ? संकोच से कह देता है। ठीक है भाई साहब और वह घर आकर आराम से सो जाता है। प्रातः उठकर सेठजी के पैर छूता है तो वह कहते हैं, तुम नहीं गये क्या तब वह कहता है। पिताजी रास्ते में भाई साहब मिले थे, उन्होंने मुझे वापस भेज दिया और वो स्वयं चले गए। सेठ सोचता है मतलब मेरा बेटा मारा गया। उधर देवी के मंदिर में पहुँचते ही पहले से सतर्क जल्लाद कुछ भी नहीं देखता, वह तो तलवार से सिर से धड़ अलग कर देता है। वह कुछ कह भी नहीं पा रहा है, घबड़ाकर मात्र णमोकार मंत्र पढ़ता है। सेठ कहता है हे भगवन् नहीं मारा हो, भगवान् न मारते हैं, न बचाते हैं, न करते हैं, न देते हैं, मिलता है उनकी भक्ति के माध्यम से। णमोकार मंत्र पढ़ता है उसका फल मिलता है। लेकिन आकांक्षा के साथ यदि भगवान् की भक्ति करता है तो फल कम मिलता है। और यदि फल की इच्छा बिना ही भक्ति करता है तो फल के साथ पाप भी क्षय हो जाता है। णमोकार मंत्र सर्वोत्तम मंत्र है। सर्वपूज्य है, सर्वश्रेष्ठ है। दुनिया के सारे मंत्र इसी से निकले हैं।

प्रातः होते-होते समाचार चारों तरफ फैल जाता है कि सेठजी के बेटे को देवी के मंदिर में किसी ने मार दिया। बाजारों में, मंदिरों में सबसे ज्यादा चर्चा होती है। महिलाओं को पूजा के बीच में याद आ जाये तो भी कहने लगती हैं। 10 मिनिट शांति नहीं रख पाती हैं। चैन नहीं पड़ती है। अपने गलत काम तो पच जाते हैं, लेकिन दूसरों का गलत काम पचाने में चैन नहीं। मंदिर में नहीं बोलना चाहिए वरन् बातें करना भी है तो बाहर आकर कर लो। यदि तुम किसी की बातें करते हो, तो कोई तुम्हारी भी करेगा। तुम किसी की नहीं करो तो तुम्हारी भी कोई नहीं करेगा। सेठ भी रोता है विलाप करता है। माँ भी, बहिन भी, सभी रोते हैं। समाचार राजा तक भी पहुँच जाता है। अभी-अभी तो

बेटी की शादी हुई थी और बेटे को किसी ने मार दिया, इस प्रकार अनेकानेक प्रकार की बातें हो रही हैं।

धीवर का जीव चार बार सेठ के मारने के प्रयास के बाद भी बच गया। मरण को प्राप्त नहीं हुआ। सेठ परेशान हो रहा था, ऐसा कैसा पुण्यशाली है कि बार-बार मौत के पास जाकर भी बच जाता है। सोच रहा था। छोड़ो अब नहीं मारते हैं क्या करना है? शांति से बैठूँगा। लेकिन मन कहता है एक बार और करके देखते हैं शायद मर जाये। आत्मा कहती है, नहीं मरेगा। मन और आत्मा अलग-अलग है। मन है सो आत्मा नहीं और आत्मा है सो मन नहीं। लगता ऐसा ही है कि दोनों एक हैं। लेकिन ऐसा नहीं है। मन क्षायोपशमिक है जबकि आत्मा पारिणामिक है। मन-ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से मन में चिंतन रूप शक्ति है। हेय -उपादेय को, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य को ग्रहण करने वाली शक्ति रूप है। मन वाले को बुलाओ, मन है बोलना समझता है। अच्छा लगने पर हँसता है प्रसन्न होता है। बुरा लगने पर रोता है। मन होने पर ही शिक्षा ग्रहण करता है। मन नहीं है तो ये कुछ नहीं करता है। चींटी के मन नहीं है तुम कितना ही बुलाओ वो नहीं आयेगी। मन वाला ही धर्म की बात ग्रहण करता है। अनसुनी भी कर देता है। मजाक में भी उड़ा देता है। साधु तुम्हारे यहाँ निश्चित ही जाने के लिए आये हैं चलता-फिरता साधु ही शोभा पाता है। गुरु की हितकारी व सच्ची बात ही अच्छी नहीं लगती तो तुम जानो क्या होगा तुम्हारा? साधु तो मुसाफिर हैं, कहकर चले जायेगें, तुम मानो या ना मानो। साधु यदि गृहस्थ को नहीं पकड़ते हैं तो कल्याण और गृहस्थ यदि साधु को पकड़ता है तो उसका कल्याण। निंदा करने से नीच गोत्र का बंध होता है। सम्यग्दर्शन छूटता है। सेठजी की आत्मा व मन में भयंकर लड़ाई चल रही है। कभी-कभी ऐसा लगता है, जैसे-दो मन हों, एक मन कुछ कहता है, दूसरा मन कुछ कहता है। दो मन नहीं हैं, वो एक आत्मा है, एक मन है। बड़ों की बात मानने में चारों तरफ लाभ ही लाभ है। आत्मा की सलाह हमेशा सही दिशा में होती है जबकि मन की सलाह गलत दिशा की तरफ विषय भोगों की तरफ

कर्म है। एक-एक समय के भाव कर्म के आश्रित होते हैं। कर्मों के उदय से भाव उत्पन्न होते हैं। भावों के माध्यम से कर्म का बंध होता है। पाप कर्म के उदय से संक्लेश होता है, पुण्य कर्म के उदय से विशुद्धि बढ़ती है। पाप कर्म के उदय से संक्लेश किया, फिर पाप का बंध तो फिर पाप का उदय, ऐसा होता रहेगा तो कभी मोक्ष नहीं होगा, मोक्ष पुरुषार्थ समाप्त हो जायेगा। पाप कर्म के उदय से प्रतिकूल सामग्री मिलती है, जिसे हम पसंद नहीं करते हैं। जैसे जिससे हमारी लड़ाई है। वह प्रवचन सुनते समय या पूजन करते समय पास में आकर बैठ गया, जब तक हमने देखा नहीं, तब तक तो ठीक है और देखते ही पूजन के शब्द सभी भूल जाते हैं, वो ही शब्द याद आते हैं, जो उस समय उसने कहे थे। शब्द तो पुद्गल की पर्याय है और उत्पन्न होते ही समाप्त हो जाती है। वो है कहाँ, फिर भी उनको याद करके हम गुस्सा कर लेते हैं। कर्म के उदय में हमारे क्रोध, मान और मायाचारी रूप परिणाम होते हैं। उनको हम कैसे संभालें, शुभ रूप में कैसे परिणत करें। पापोदय से प्राप्त प्रतिकूल सामग्री मिली उसे अनुकूल रूप से अनुभव कर लिया तो आगे पाप का बंध नहीं होगा। तत्त्वार्थसूत्र के छटवें अध्याय में आसातावेदनीय के बंध के कारणों को बताते हुए आचार्य कहते हैं कि - **दुःखशोकतापा क्रन्दन वधपरिदेव नान्यात्म परोभय स्थानान्यसद्वेद्यस्य।** अर्थात् दुःख के उदय में दुःख करता है तो असाता का ही बंध होता है। मुक्ति तभी संभव है, जब पाप के उदय में मिलने वाली सामग्री में, सुख की अनुभूति कर ली। मीराबाई ने विष का प्याला भी अमृत समझ कर पी लिया, आत्म विश्वास था, मैं गलत नहीं हूँ और भगवान् को साक्षी बनाकर नमस्कार करके पी गई, असाता के उदय में भी साता बांध ली। सीता ने अग्नि परीक्षा की, पाप के उदय से अग्निकुण्ड में कूदना था, लेकिन उस विपरीत परिस्थिति में भी वह विचलित न होकर, दुःख की अनुभूति न करके भगवान् को साक्षी बनाकर, नमस्कार किया, भगवान् का नाम स्मरण किया और आत्मविश्वास के साथ मैं शीलवती हूँ, मैंने स्वप्न में भी परपुरुष को पति की दृष्टि से नहीं देखा और अग्निकुण्ड में कूद गई ऐसा सोचा तो वह अग्नि पानी हो गया। अशुभ में भी शुभोपयोग रूप परिणाम कर लिए। असाता की श्रृंखला

समाप्त कर दी। पाप के उदय से पाण्डवों पर उपसर्ग हुआ, लेकिन उसमें समता भाव रखा यह शरीर जल रहा है। मैं जल नहीं सकता हूँ, यह शरीर पर है, मैं हूँ ही नहीं। मैं तो शुद्धात्मा हूँ। यह शरीर भी, अंगोपांग भी मैं नहीं हूँ। जैसे दूसरे के टूटने पर, दूसरे के शरीर के कटने पर मुझे कुछ नहीं होता है। वैसे ही इस शरीर के जलने पर मैं नहीं जलता हूँ, देख रहे थे, ज्ञाता दृष्टा बने थे। ऐसे भाव हैं तो साता भी नहीं और असाता भी नहीं, कर्म बंध ही नहीं हो रहा है। रागद्वेष पक्ष-विपक्ष, नीति-अनीति सबसे रहित है। बाहर से भी मौन अंदर से भी मौन है। जैसे-दूध, पानी मिले होने पर एकमेक दिखते हैं, लेकिन पानी दूध जैसी पुष्टता नहीं देता और दूध पानी जैसी प्यास शांत नहीं करता है। वैसे ये शरीर आत्मा एकमेक हैं। शरीर के प्रत्येक प्रदेश पर आत्मा के प्रदेश हैं। जहाँ-जहाँ चेतना है, वहाँ-वहाँ लगने पर, कट जाने पर दुःख की अनुभूति होती है। तकलीफ होती है। इतने एकमेक होने पर भी शरीर आत्मा नहीं, आत्मा शरीर नहीं। ऐसी ज्ञानी अनुभूति करता है। ज्ञानी भेदविज्ञान के माध्यम से जैसे चेतना रहित निर्जीव होता है, वैसे ही शरीर जल रहा है, यह निर्जीव है जल जाए। ऐसी अनुभूति करके कर्मों को भी जला देता है। और शुद्ध अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं। जितना-जितना रागद्वेष उत्पन्न होता है। उतना-उतना कर्म बंध की प्रक्रिया होती है। साता के उदय में असाता भी और साता भी दोनों बाँध सकता है। ऐसे ही असाता के उदय में अपने परिणामों के माध्यम से साता भी व असाता भी बाँध सकता है। उस धीवर के जीव के असाता का तीव्र उदय था, सो पाँच बार मारा गया, लेकिन पूर्वोपार्जित पुण्य के उदय से बच गया और असाता के तीव्र उदय में समता रखी थी, संक्लेश नहीं किया था तो साता बाँधी, उससे राजा बन गया, सुख वैभव मिल गया। राजा बनकर वह एक दिन पड़गाहन करता है। यद्यपि धर्म समझता नहीं था, फिर भी साधु के ऊपर श्रद्धा थी। पड़गाहन करके आहार करवाता है। आहार के पश्चात् राजा के मंत्री आदि सभी जानते थे कि हमारे राजा के साथ ऐसी-ऐसी घटनाएँ हुई हैं तो सभी उत्सुकता वश मुनिराज से पूछ लेते हैं कि ऐसा क्या किया था? जो ऐसा हुआ। मुनिराज कहते हैं कि तुम्हारे राजा ने पूर्व भव में पाँच बार जीव को अभयदान

सेठजी ने बेटे की खुशियाँ मनाई। और सेठानी भी बच्चे को संस्कारित करती है, क्योंकि माँ ही बच्चे को गर्भ से संस्कारित कर सकती है। माँ जैसा करती है, खाती है, भगवान की पूजा-अर्चना करती है, सोती है, वैसा ही बच्चा करता है। देखो, अभिमन्यु की माँ सो गयी तो चक्रव्यूह में फँस गया। माँ यदि भोगों की तरफ आकर्षित होती तो बच्चा भी भोगों की तरफ जाता है।

20 वर्ष का बेटा होते ही माँ बाप सपने देखने लगते हैं। बेटे की शादी होगी, बहूरानी आयेगी। लेकिन सेठानी के बहू कैसे आ जाए? उनका बेटा शादी करना नहीं चाहता था। लड़की पसंद नहीं आ रही है। स्पष्ट रूप से देखी भी नहीं, बहुत सारी लड़कियाँ देखीं, लेकिन मन में वासना नहीं है तो कुछ कहता ही नहीं, लड़कियों को देख-देख कर तिरस्कार करता है। कभी दहेज पसंद नहीं, तो कभी मेनर्स नहीं। तो कभी गोरी कभी काली है। फिर भी माँ बाप दिखाते हैं, ग्राहक कितना भी तिरस्कार करे, लेकिन दुकानदार ग्राहक को माल दिखाता है। जलपान कराके इधर-उधर की मीठी बातें सुनकर सुनाकर चीजें दिखाते हैं, दो चीज सस्ती देकर एक चीज में ठग लेते हैं या चीज कम दे देते हैं। दुकानदार है, वो ठगा नहीं जा सकता है, ठग ही लेगा। कुछ नहीं भी लेते हो तो भी बिठाता है, गपशप करता है, बनाये रखता है। बनिया हो, वो भी यदि जैन हो तो कहीं भी उल्लू नहीं बन सकता है। जब गरज होती है तो गधे को भी बाप कहता है। लड़की की शादी करना है तो लड़के वालों के चक्कर लगाता है, खुशामद करता है। बनिया से कर्ज ले लिया तो मूलधन तो कभी चुका ही नहीं पाता है। ब्याज-ब्याज में ही सारा जीवन चला जाता है। उस ब्याज को तुम भोगते हो, ब्याज से रखे हुए आभूषण को पहनते हो तो पाप तुम्हें लगेगा। पुरुष पाप भी घंटी के लिए ही करता है। जैसे ही भोजन करने आये वो वैसे ही घर की, बाहर की, पीहर की सास-ननद की सब परोस देते हैं। शांति से भोजन ही नहीं करने देते हैं। धर्मपत्नि वही है, जो पति को शांति से भोजन करने देती है। शांति से विश्राम/आराम करने देती है। समय पर कहती है तो वो भी सुनते हैं। जबकि पुरुष दुकान की घाटों-मुनाफों आदि कि कुछ भी बातें नहीं करते हैं, वह लड़का शादी की हाँ भी नहीं कर रहा था और मना भी नहीं करता है।

सब कुछ अच्छा करता था। प्रत्येक कार्य में आगे रहता था, पूजा-पाठ, दान, समाज के धार्मिक कार्यों में प्रशंसनीय योगदान रहता था। उसे सभी चाहते थे। मित्रों से कहकर भी पुछवाते लेकिन कुछ बोलता ही नहीं था। इससे कोई निर्णय भी नहीं हो पा रहा था। सभी सोचते शादी नहीं होगी तो आगे सेठजी की संतति कैसे चलेगी ? एक दिन वह मंदिर जाता है और मंदिर के बाहर दीवाल पर एक स्त्री का चित्र उकेरा हुआ था, उसे देखकर सब भूल जाता है। मंदिर के बाहर खड़ा-खड़ा उसे एक-एक अंगोपांग देखता है और जीवन की कल्पनाओं में उलझ जाता है। आज तक इतनी लड़की देखीं, पसंद न आईं और आज यह पाषाण पर बनी पुतली पसंद आई, शादी इससे ही करनी है। मित्रों ने मजाक उड़ा दी। वह मंदिर के अंदर चला गया, लेकिन वहाँ वेदी में, छत्र में, चँवर में, सिंहासन में, सभी में वो ही कल्पनाएँ होने लगी, मन जहाँ रमता है, वहाँ ही दिखता है। एक बार स्कूल में एक बच्चें से शिक्षक ने पूछा 2 और 3 मिलकर कितने होते हैं। बच्चा कहता है पाँच रोटी। तब शिक्षक को समझ में आया कि इसने रोटी नहीं खायी है इसलिए तो रोटी ही रोटी दिख रही है।

वह भी घर आ गया, घर आते-आते उसे बहुत तेज बुखार आ गया, बाहर से तप रहा था, लेकिन थर्मामीटर लगाने पर उसमें नहीं आया क्योंकि यह शरीर का ताप नहीं था। यह मन का ताप था, वासना का ताप था, काम का ज्वर आ गया था। माता-पिता को जब यह मालूम चला कि बेटे को लड़की पसंद आ गई, लेकिन कौन-सी, वह पाषाण पर बनी पुतली। सेठ सोचता कुछ नहीं, पसंद तो आई, यहाँ-वहाँ जानकारी की गई कि किसने बनाया है यह चित्र। शिल्पी की खोज हुई, शिल्पी मिल गया, उससे पूछा गया उसने बताया कि फलॉ सेठ की बेटी है, मुझे बहुत अच्छी लगी थी, इसीलिए उसका चित्र बना दिया था। सेठ ने भी अपने बेटे का चित्र बनाकर उसके पास भेज दिया, वो लड़की भी उस चित्र को देखकर मोहित हो गयी, मुझे भी बस यही चाहिए अब क्या था? दोनों राजी हो गए। दोनों सेठ भी तैयार हो गये। दोनों ही तरफ से शादी की तैयारियाँ शुरू हो गयी। लड़की के पिता ने सभी विशेष-विशेष सामग्री खरीद ली। जैसी आप खरीदते हैं, लेकिन वह धर्मात्मा था, बेटी को भी

दही-गाँव में पहुँच जाता है। दही दूध से बनता है, दूध से भी ज्यादा पौष्टिक होता है। पेट गडबड़ हो तो दही खाने से ठीक हो जाता है। दूध खालो तो और बिगड़ जाता है और दही से ही घी बनता है। उस दही-नगर के लोग भी कोमल स्वभाव वाले थे। वहाँ धर्म और धर्मात्मा दोनों थे, बड़े-बड़े जिनालय शोभित हो रहे थे। साधु वर्ग भी वहाँ आते थे। वहाँ के लोग श्रावक के कर्त्तव्यों का अच्छी तरह से पालन करते थे। वह उस नगर के बाहर ही एक बगीचे में पहुँचता है। उस बगीचे की एक विशेषता थी, वहाँ का एक भी वृक्ष हरा नहीं था। लताएँ प्रसन्न नहीं थीं। एक भी फूल उन पर नहीं था। कहीं फल भी नहीं लगे हुए थे। वह वीरान्/ उजड़ा बगीचा था, उस बगीचे का मालिक भी बहुत परेशान था। उसने हर प्रकार से उपाय कर लिए थे। फिर भी वह बगीचा फलता-फूलता नहीं था, वो सोचता अब क्या करें? जैसें व्यवसाय करने वाले भी कभी-कभी फलीभूत नहीं होते क्योंकि वे भी अपनी आय-व्यय का ब्यौरा सही नहीं रख पाते हैं। यदि आय कम और व्यय ज्यादा है तो वह कभी भी पनप नहीं सकता है। धनवृद्धि को प्राप्त नहीं हो सकता है। वैसे ही वो सोच रहा था, यहाँ भी ऐसी कौन-सी कमी है। तभी उस बगीचे का मालिक वहाँ आता है। पराये लोगों को देखकर भी यदि उसको खान-पान की, रहन-सहन की पूछता है तो वह बहुत व्यवहार कुशल माना जाता है और उस सेठ के पास इतनी व्यवहारिकता थी और उससे परिचय पूछता है। जलपान की पूछता है। तब वह पूछता है आपका यह बगीचा सूखा क्यों है? तब वो कहता है मैंने बहुत प्रयास कर लिया, लेकिन यह हरा-भरा होता ही नहीं है। तुम्हारे पास कुछ हो या तुम्हारी बुद्धि से कुछ करें तो यह बगीचा खिल जाए। वह जानता था कि कुछ पेड़ ऐसे होते हैं कि स्त्रियों की लात खाने से, आलिंगन करने से, चुंबन लेने से, उनके मुँह के कुल्लों से फल-फूल जाते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि एकेन्द्रिय है, चेतना है, उसके कषाएँ हैं, वासना है, नपुंसक वेद है। नपुंसक वेद के कारण ही ऐसा होता है, इस वेद के उदय से पुरुष और स्त्री दोनों में रमने के भाव होते हैं लेकिन रमण कर नहीं पाता है। उसकी वासना शांत नहीं होती है। अबा की अग्नि के समान यह वासना होती है। चार माह तक वर्षा

होने के बाद भी गरम निकलती है। अंदर-अंदर जलती रहती है। ऐसे ही नपुंसक वेद वाला अंदर ही अंदर तड़पता रहता है। कभी शांति नहीं मिलती है। इसीलिए लोक में, समाज में उसे अच्छा नहीं माना जाता है। उसकी समाज अलग होती है। और उसने ऐसा ही किया/करवाया तो पूरा बगीचा हरा-भरा हो गया। देखकर सेठ प्रसन्न हो गया इसका तो सम्मान करना चाहिए। सभी के बीच में प्रशंसनीय है और बसंतोत्सव का आयोजन किया। सभी को बुलाया और कहा कि इस नवयुवक के कारण मेरा बगीचा पुनः फल-फूल गया है। तब सभी लोग उसे देखने लगे कि विशेष पुण्यशाली यह कौन है? सारा नगर प्रशंसा करे, यह सबसे बड़ा पुरस्कार है। अब वह वहीं सेठ के यहाँ रहने लगा। उसने इतना बड़ा उपकार किया था। समय निकलता गया और एक दिन उसे ज्ञात हुआ कि सेठजी व्यापार करने विदेश जा रहे हैं, तब उसने कहा मैं भी चलूँगा और सेठजी सोचते हैं, अच्छा है, बुद्धिमान भी है, बलवान भी है, परोपकारी भी है। कहीं पर भी काम आ सकता है और सेठ उसे अपने साथ ले चलते हैं और जाते-जाते सिंहलद्वीप पहुँच जाते हैं और वहाँ एक वृद्ध श्राविका के यहाँ पर जाकर रुकते हैं, जो सज्जन शीलवान होते हैं, वो यौवन में अपनी शील रक्षा के लिए कभी भी किसी भी युवती के यहाँ जाकर नहीं रुकते हैं, क्योंकि जवानी में स्त्रियों का सम्पर्क मतलब घी अग्नि के पास रहे और पिघले नहीं। स्त्री अग्नि, पुरुष घी है। यद्यपि आपस में कुछ सम्बन्ध नहीं है, फिर भी एकान्त में स्त्री-पुरुष का मिलना, बैठना सदाचार को दूषित करने वाला है। धार्मिक स्थानों पर भी यदि एक लड़के लड़की को रोज-रोज देखते हैं तो भी लोगों के मन में आ ही जाता है, बातें होने लगती हैं कि कहीं न कहीं दाल में कुछ काला है। अरे स्त्री-पुरुष का एकान्त तो विनाश का कारण है। जब मुनियों को भी मूलाचार में कहा है-कानी, कुबड़ी, लूली-लंगड़ी, जवान-वृद्ध, सुंदर-कुरूप हो तो भी चिर दीक्षित मुनि को सम्पर्क नहीं करना चाहिए। स्त्रियों को भी अपने पति के अलावा पर पुरुष से भद्दी मजाकें भी नहीं करना चाहिए। तत्त्वार्थसूत्र के चौथे अध्याय में लिखा है - स्पर्श से, रूप से, शब्द से, देखने से भी वासनाएँ शांत होती हैं। लड़के से माँ का प्रेम, लड़की से पिता का प्रेम

के यहाँ ससुराल में ही रहने लगा। लेकिन अपनत्व के साथ ससुराल में रहा। एक दिन वह सेठ कहता है कि हम वापस जा रहे हैं। तो वो भी कहता हम भी वापस चलेंगे। तब राजा ने 32 करोड़ दीनार और भी अनेक सामान के साथ विदा किया। रास्ते में वह सेठ राजकुमारी पर मोहित हो गया कि यह इतनी सुंदर है। मुझे मिलना चाहिए यह तो परदेशी है। इसके पास तो कुछ भी नहीं है या इसके लायक नहीं है। सुंदर स्त्री को पुरुष वासना की दृष्टि से देख ले तो मोहित हुए बिना नहीं रहता है। मन में विचार करता है कि इसके रहते तो यह मिल नहीं सकती। इसका क्या करूँ? समुद्र में फेंकूँ या मार दूँ, क्या करूँ, सोच रहा था, षड्यंत्र बना रहा है।

संसार में झगड़े के तीन कारण हैं - जर, जोरू, जमीन। मुख्य स्त्री झगड़े का कारण है। स्त्री नहीं हो तो धन, जमीन के लिए लड़ाई नहीं होती है। दोष स्त्री का नहीं पुरुष का है। स्त्री षड्यंत्र में प्रायः सफल हो जाती हैं। पुरुष सफल भी और असफल भी होता है। आँख आती है, जाती है, लगती है, मिलती है तो दुःख देने वाली होती है। आँखों में बीमारी आती है, आँख की ज्योति चली जाती है, नजर लगती है तो दृष्टिदोष, चेतन तो क्या जड़ पदार्थों पर लग जाती है। गोमटेश बाहुबली की एक अंगुली छोटी बनाई है। अप्रतिष्ठित प्रतिमाओं पर इसीलिए काला धागा या काले कपड़े से आच्छादित करते हैं। मकान भी बनाते समय ही चप्पल या काला घड़ा उसके ऊपर रख देते हैं। प्रतिमा प्रतिष्ठित (सूरिमंत्र) होने के बाद दृष्टिदोष नहीं लगता है। आँख लगने से मकान टूट सकता है। प्रतिमा भी फट जाती है। बच्चों को भी काला टीका लगाते हैं। वह सेठ भी श्रीमति के ऊपर मोहित हो गया था। स्त्री को संसार में भोग्या कहा है। पुरुष भोक्ता है, पुरुष विवाहित 8, 16 और 96 हजार स्त्रियों से भी भोग कर सकता है। लेकिन कुंवारी, परस्त्री, विधवा से भोग करता है तो व्यभिचारी कहलाता है, स्त्री दूसरी शादी करती है तो उस स्त्री को भी समाज अच्छी दृष्टि से नहीं देखती है। क्योंकि वह भोग्या है। उच्छिष्ट के समान है। जैसे रोटी खाई फिर उल्टी हो जाए तो उसे कोई पसंद नहीं करता है। उसी प्रकार पुरुष से भोग्य स्त्री दूसरे पुरुष के द्वारा भोग्य नहीं होती है। उल्टी की

भांति है। राजुल का परिणय बंधन नहीं हुआ था, प्रेम बंधन हो गया था। इसीलिए दूसरी शादी नहीं की थी। आजकल तो देखने-देखने में ही आधा खर्च हो जाता है। पहले माता-पिता देखते हैं। फिर भाई-बहिन, फिर लड़के के दोस्त या अन्य कोई सम्बन्धी बाद में लड़का देखता है। और सबने पसंद कर ली, लेकिन लड़का अंत में नापसंद कर देता है। कितना सारा खर्च करवाते हैं। अरे पहले से ही लड़के को दिखाना चाहिए ताकि अन्य सारी समस्यायें उत्पन्न ही न हों। अन्यथा ये सब क्रियायें छल में आती हैं। देखो पवनञ्जय छल से अपनी होने वाली पत्नी को देखने गये थे, उसका भी फल उन्हें भोगना पड़ा। पूर्वोपार्जित कर्म का उदय तो मूल कारण है। उसका ही फल मिलता है। वो सेठ भी श्रीमति को देखकर षड्यंत्र बना रहा था, जहाज में सारी व्यवस्थायें होती हैं। समुद्री जहाज जिसमें व्यापार की मुख्यता होती है तो महीनों-महीनों तक की पूरी राशन की व्यवस्था रहती है। यह एक प्रकार से चलता हुआ घर ही रहता है। सेठ सोच रहा था कैसे किस प्रकार उसे अलग करें, सड़क पर चल रहे होते तो एक्सीडेंट करवा देते है। लेकिन यह जहाज है किसी पक्षी से टकराये और भंवर में फँस जायेगा तो निकलना मुश्किल हो जायेगा ऐसे ही शादी के सात भंवर पड़ते हैं तो संसार में फँस जाते हैं। फिर निकलना मुश्किल हो जाता है। जिंदगी भर पड़े रहते हैं। वह सेठ अन्य सबसे कहता है कि यह जिनदत्त बहुत खराब है। इसने कुछ किया तो है नहीं और धन का पूरा-पूरा हिस्सा देना पड़ेगा इसीलिए इसे जहाज से गिरा देते हैं। धन का लोभ ऐसा ही होता है। अच्छा व्यक्ति भी खराब दिखने लगता है और सेठ के डर से भी, धन प्राप्ति के लोभ में आकर सभी ने स्वीकार कर लिया और उसने कहा बर्तन गिरेंगे, तुम उन्हें उठाने के लिए कूदना नहीं और वो जिनदत्त दौड़कर कूद जायेगा, उसे भी रोकना नहीं। जो धर्मात्मा है समझदार है, वह स्वयं भी धर्म करता है और अपने सम्बन्धियों को भी धर्म की प्रेरणा देता है। धर्म करवाता है लेकिन जिसके अंदर लोभ है तो बेटे को या भाई को दुकान पर बैठने के लिए कह देते हैं। या धर्म की बात करते ही नहीं है। गुरु ने कहा भी तो एकाध बार अनमने मन से कह दिया आया तो ठीक, नहीं आया तो ठीक। वो भी सभी

ज्यादा हो गया तो अनंत संसार में डूब जायेगा। वह कामी सेठ सोचता है ठीक है। अभी नहीं मिल रही है तो 6 माह तक इंतजार करता हूँ। और 6 माह पूरे होते ही जहाज भी किनारे लग गया और पहुँचते ही राजा के पास जाते थे। सेठ ने उससे भी कहा चलो लेकिन वह वहीं बगीचा में ठहर गयी और वहीं कुछ व्यक्ति दिखे उनके साथ वह चम्पापुर चली गयी और जिनालय में जाकर जिनेन्द्र भगवानके दर्शन करती है और एक महिला दिखती है, जो विधवा भी नहीं, साध्वी भी नहीं फिर भी सादगी से पूर्ण दिख रही है। आजकल स्त्रियाँ शृंगार करके बाजार में जाती हैं, जबकि स्त्री का शृंगार मात्र शयन कक्ष तक ही होना चाहिए। मैनासुंदरी भी 12 साल तक सादे लिबास में उदासीनता पूर्वक रही थी। पति के आने पर ही शृंगार किया था, उसने भी देखा कि सुहाग के चिह्न रूप बिछियाँ, मंगलसूत्र तो पहने हैं, वह श्रीमति उसके पास जाती है और उसका परिचय पूछती है, अपना बताती है, दोनों का दुःख समान था, वह कहती है तुम भी यहीं रहो, मेरे साथ मेरे पिताजी सब व्यवस्था कर देंगे।

इस संसार में भ्रमण करते हुए किस समय, क्या हो जायेगा, कोई विश्वास नहीं है। एक समय में जीव में सात राजू की यात्रा करने की शक्ति है। एक पुद्गल परमाणु एक समय में 14 राजू तक जा सकता है। निगोदिया जीव कलकला पृथ्वी से निकल कर एक समय में सिद्धशिला के पास उत्पन्न हो सकता है। यह सब कैसे हो सकता है, अंतरङ्ग कारण कर्म का उदय, उपशम क्षयोपशम है। कभी जड़ कभी चेतन ये तो बाह्य निमित्त हैं। बहिरङ्ग निमित्त से ज्यादा अंतरङ्ग कारण बलवान होता है। राजवार्तिक में अकलंकस्वामी लिखते हैं कि ''**प्रत्येक कार्य की सिद्धि में दो हेतु हैं -बाह्य, अभ्यंतर।**'' उस जिनदत्त ने भी कभी कल्पना भी नहीं की होगी कि उसके साथ क्या-क्या घटनाएँ घट जायेगी? हम जिसके बारे में सोचते हैं, योजना बनाते हैं, वह हो नहीं पाता और जो कभी सोचते नहीं हैं, वो हो जाता है। 2-3 वर्ष पहले भुज में भूकम्प आया था, उस समय शाम को सोने वालों में से किसी ने भी नहीं सोचा होगा कि यह हमारी आज की रात अंतिम रात है या सुबह होगी की नहीं। सब धराशायी हो गया। बहिरङ्ग कारण कुछ भी नहीं दिख रहा था न विदेशी

आक्रमण था, न आतंकवादी थे। बाहर वाला अंदर वाले को निकालने गया और वह मर गया जो अंदर था, वो सात दिन बाद बाहर आ गया। जैसा निमित्त दिखा हम वैसा ही अनुमान लगाने लगते हैं। रागद्वेष करने लगते हैं। भव-भवांतर तक प्रेम की, बैर की याद बनी रहती है। यह कर्म का उदय है, किए गए परिणामों का फल है। कर्म का उदय संसारी जीव को ही होता है। रागद्वेष भी संसारी में ही होता है। जो कर्म के उदय में घबराते नहीं हैं, पुण्य में फूलते नहीं, पाप में मुरझाते नहीं, वो ही अपना कल्याण कर लेता है। वह जिनदत्त भी तीसरी पत्नी के साथ चम्पापुरी के बाहर आ जाता है। और रात्रि में सो रहे थे तो एक सोता है, एक जागता है। जिनदत्त सो रहा था वह जाग रही थी। अर्द्धरात्रि तक वह सोता है, फिर वह जग जाता है और पत्नी सो जाती है। मध्यलोक में सुई की नोंक बराबर भी स्थान ऐसा नहीं है। जहाँ व्यन्तर देवों का निवास नहीं हो, मूल शरीर तो विमान में, लेकिन विक्रिया से सर्वत्र विचरण करते रहते हैं। सभी जगह आकाश द्रव्य है इसीलिए उनके रहने में कोई बाधा नहीं है, ये बाधा तो हम अपने अच्छे-बुरे परिणामों के माध्यम से रागद्वेष कर उत्पन्न कर देते हैं। अरहट की घड़ी के समान प्रमाद से, कषाय से, कर्म का आस्रव बंध निरंतर चलता रहता है। पुरुषार्थ पूर्वक खाली नहीं करो तो खाली नहीं होता है। कर्म बंध भी समाप्त नहीं होता है। विशेष तपस्यादि पुरुषार्थ से पहले संवर और निर्जरा करते हैं, तब मोक्ष होता है। आना बंद हो और पहले का निकलना जारी रहे तब पूर्ण खाली होगा। आस्रव-बंध संसार के कारण हैं तो संवर, निर्जरा मोक्ष के कारण हैं। पत्नी के सोते ही वह जिनदत्त सोच-विचार करता है कि पुरुषार्थ के माध्यम से कुछ करना चाहिए और जो पुरुषार्थी होता है, वह अपने बल पर खड़ा होना चाहता है। कब कौन से, छोटे निमित्त से कौन-कौन से बड़े कार्य हो जाते हैं। हल्का-सा सिरदर्द हुआ और उसको ठीक करने, मन लगाने के लिए जुआ खेला उसका परिणाम जीवन में इतने उतार-चढ़ाव आ गये, हम तो 5 मिनिट में बात कर लेते हैं, लेकिन उसको तो वर्षों लगे होंगे, उन सबको भोगने में। कितनी कैसी भावना होगी, कैसे परिणाम रहे होंगे, कर्म के उदय में क्या-क्या किया होगा? उन सबको लिखा, बताया नहीं जाता है। वह कुछ नया

इनका पति तो सुनकर सभी दंग रह जाती हैं, यह कुबड़ा अपने आपको हमारा पति बताता है तो राजा से कहती है, नहीं। वो बहुत सुंदर थे, ऐसे नहीं थे तभी वह रूप बदलकर जवान सुंदर बन गया लेकिन काला बना, फिर देखती है लग तो वैसे ही रहें लेकिन वो काले नहीं थे। तब फिर वह सही रूप बना लेता है। और सभी मिल जाते हैं। राजा अपनी बेटी की शादी भी उससे कर देता है और आधा राज्य भी दे देता है। वह चारों पत्नियों के साथ श्रावकोचित धर्म करते हुए दान, पूजा, शील, उपवास का पालन करते हुए रह रहे थे। धर्मध्यान पूर्वक समय व्यतीत कर रहा था।

यह जीव एक समय में 70 कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण मिथ्यात्व की स्थिति बाँध सकता है। गृहीत मिथ्यादृष्टि देव-शास्त्र-गुरु का तिरस्कार करके मिथ्यात्व का उत्कृष्ट बंध बाँध सकता है। यदि बंध प्रारम्भ हो गया तो कम से कम अंतर्मुहूर्त तक तो बंधती है। वही जीव पुरुषार्थ करके 70 कोड़ाकोड़ी सागर भी एक अंतर्मुहूर्त में नष्ट कर सकता है। संक्लेश परिणाम से उत्कृष्ट स्थिति बाँधता है तो विशुद्ध परिणामों से उत्कृष्ट स्थिति को समाप्त कर सकता है। कब कैसे कहाँ, क्या हो जाता है? अनुभव में नहीं आ पाता है। विचार करते हैं, आश्चर्य नहीं, अंतरङ्ग-बहिरङ्ग कारण तो अपना प्रभाव दिखाते हैं। कर्म के प्रबल उदय में समता रखना बहुत कठिन है। कर्मोदय की अपेक्षा पुरुषार्थ प्रबल है तो कर्म अपना प्रभाव दिखा नहीं पाते हैं। नदी के तीव्र प्रवाह में बड़े-बड़े तैराक भी डगमगा जाते हैं, लेकिन मंद प्रवाह में भी पुरुषार्थहीन है तो भी डगमगा सकता है। बह सकता है। पुरुषार्थ न करने वाला तो थोड़े से पानी में भी मर सकता है। **पुरुषार्थी तीव्र मंद दोनों में पार कर सकता है।** कर्मकाण्ड में उदय-उदीरणा बताते हुए कहा है कि सत्ता में रखा कर्म एक साथ उदय में आ जाता है तो बाढ़ आ जाती है। पहाड़ का पानी एक साथ बहकर आ जाये तो ही नदी में पूर आता है और यदि वही पानी थोड़ा-थोड़ा यहाँ वहाँ से निकल जाता है तो पूर नहीं आ पाता है। नदी के पूर में बड़े-बड़े नगर तक बह जाते हैं, डूब जाते हैं। कर्म का बंध सत्ता दुःखदायी नहीं, सुखदायी नहीं वरन् कर्म का उदय दुःखदायी और सुखदायी होता है। संसारी

प्राणी सोचता क्या है? करता क्या है? कहता क्या है? कुछ भी नहीं कह सकते हैं। भाव हैं, एक-एक समय में परिवर्तित होते रहते हैं, बिजली की चमक के समान चमकी तो लेकिन कितनी, कब, कैसी चमकी कह नहीं सकते, पकड़ नहीं सकते हैं, ऐसे ही भाव हैं, पकड़ में नहीं आ पाते हैं। कर्म बंध मन, वचन, काय तीनों से होता है। काय से यहीं बैठे हैं और मन कहाँ-कहाँ चला जाता है? पता ही नहीं लगता है, तभी तो व्यक्ति सामने बैठा है, सुन रहा है और सुन नहीं पाता है कि क्या बोला गया है? उत्तर तो उत्तर प्रश्न भी नहीं सुन पाता है। इसीलिए किससे, कैसा कितना कर्म बंध हो जाता है, कहा नहीं जा सकता है। करोड़ों वर्षों तक सत्ता में रह सकता है, 11 वें गुणस्थान में मिथ्यात्त्व की सत्ता है, उदय आते ही 11वें से पहले में आ जाता है। अनंतानुबंधी की सत्ता है, उदय आते ही सासादन गुणस्थान में आ जाता है। घर में धन (सत्ता) रखा है तो पेट नहीं भर सकता है। पेट तो जब उदय में आयेगा खाया और पच गया तब भरेगा। सत्ता में है तो कुछ भी पता नहीं चलता लेकिन उदय में आते ही समझ पड़ती है, कैसा कर्म बंधा था, बंध है तो सत्ता है, सत्ता है तो उदय में भी आयेगा लेकिन जो पुरुषार्थी होते हैं, वे उदय में आते ही मूल से समाप्त करते हैं और सत्ता समाप्त तो उदय भी समाप्त हो जाता है।

वह सेठ भी मुनिराजों की भक्ति, वैय्यावृत्ति करता था। एक दिन विचार करके साहस करके मुनिराज से पूछता है कि मेरा जन्म सेठ के यहाँ हुआ, वैभव मिला, स्त्री सुख मिला, धन, धर्म सभी भरपूर मिले, लेकिन मेरा और इनका वियोग क्यों हुआ ? मिलन क्यों हो गया ? बार-बार ऐसी आपदों से क्यों जूझना पड़ा ? हमारा आपस में प्रेम भी था, फिर भी ऐसा हुआ जाति वालों से प्रेम न करने वाला कुत्ता की श्रेणी में आता है। जाति वैमनस्य नहीं रखो। संसार में कोई भी अपने बच्चे का नाम श्वानसींग, कुक्कुरकुमार नहीं रखता है यद्यपि अनेक गुण हैं, कुत्ते में। फिर भी एक बड़ा अवगुण है, उसके कारण ही उसकी यह स्थिति कही है। यह दुर्गुण मनुष्य में हो तो वह समाज में सुख से नहीं जी सकता है। आदमी स्त्री का भक्त सबसे अधिक भोजन के कारण से होता है। वह कुत्ता भी 2 रोटी के सूखे टुकड़े खाकर भी स्वामी का

साड़ियों को बनाया सीढ़ी

एक पुरोहित था, राजाओं के राज्य में राज पुरोहित का एक विशेष पद होता है। नगर में सबसे ज्यादा धनवान व्यक्ति को नगर श्रेष्ठी, सबसे ज्यादा धर्मात्मा को धर्मश्रेष्ठी, सबसे ज्यादा दान देने वाला दानवीर, सबसे ज्यादा आहार देने वाला भगवानकी पूजन करने वाला, साधु का सम्मान करने वाला, श्रावक शिरोमणि कहलाता है। उसी प्रकार जो ज्योतिष ज्ञान को जानने वाला हो, बुद्धि में श्रेष्ठ हो, उसे राजपुरोहित कहा जाता है। जो चारों तरफ की, आगे-पीछे की आपत्ति-विपत्ति को बताने वाला एवं परिस्थितियों को सुलझाने वाला होता है। वह ज्योतिष ज्ञान है। कभी-कभी उत्तर देने की कला सही नहीं हो तो भी ज्योतिष विद्या विफल हो जाती है। कभी-कभी ग्रहादि सही-सही न जानने से भी गड़बड हो जाता है।

एक बार एक राजा ने एक ज्योतिषी को बुलाया और पूछा कि मेरी आयु कितनी है तो ज्योतिषी ने कहा राजा आपकी आयु इतनी है कि आपके सामने आपके बेटे, पोते सभी मर जायेंगे, सुनकर राजा को गुस्सा आ गया और उसने ज्योतिषी को शूली की सजा सुना दी गई। दूसरे ज्योतिषी को बुलाया गया, उससे भी राजा ने अपनी आयु पूछी उसने कहा राजा आपकी आयु बहुत लम्बी है, आप अपने सभी भरे पूरे परिवार को देखेंगे। राजा खुश हो गया ज्योतिषी को पुरस्कार दिया गया। बात एक थी, लेकिन बोलने की कला से एक को शूली की सजा तो एक को पुरस्कार मिला। इसीलिए बोलते समय सभ्यता रखना चाहिए। वाणी संयमित होना चाहिए। हमेशा सकारात्मक बोलना चाहिए, नकारात्मक बोलने से हानि हो जाती है। संसार में सभी आते हैं, जाते हैं, जन्म-मरण करते हैं, कोई भी अजर-अमर नहीं रहता है। तीर्थंकर भी जाते हैं, लेकिन उनका व्यक्तित्व, गुण, कीर्ति सदैव जीवित रहती है। कीर्ति रूपी शरीर से वह करोड़ों वर्षों तक जीवित बना रहता है। भगवान् आदिनाथ को

मोक्ष गये लगभग 1 कोड़ाकोड़ी सागर हो गये। लेकिन आज भी वो हमारे बीच में जीवित हैं। ब्राह्मी, सुंदरी, सुनंदा सभी चले गये लेकिन आदिनाथ भगवान् को लोग याद करते हैं, उनकी प्रतिष्ठा करवाते हैं। आज सबसे ज्यादा पंच-कल्याणक भी आदिनाथ भगवान् के होते हैं, क्योंकि उनके जीवन से कुछ ऐसी घटनाएँ जुड़ी हुई हैं। जैसे-षट्कर्म की व्यवस्था उन्होंने ही बतायी। असि, मषि, कृषि, शिल्प, वाणिज्य, कला सभी की शिक्षा भगवान् ने ही दी थी। आदिनाथ भगवान् ने ही बताया था कि भोजन कैसे बनाना है? रोटी कैसे सेंकना है? परांठे कैसे बनाना? बाटी, मठरी, गोंठा आदि किस प्रकार बनाना है जो कि खाने के योग्य रहे। उसके पहले लोग कल्पवृक्ष के माध्यम से ही खाते-पीते थे, कल्पवृक्ष के सामने जाकर माँगों तो सभी प्रकार की चीजें (लड्डू, पेड़ा, जलेबी, नमकीन) मिल जाती थी। लेकिन वो मात्र हरड़, बहेड़ा, आँवला बराबर खाकर ही तृप्त हो जाते थे। जब भूख नहीं लगती थी तो सब मिलता था, अब भूख लगती है तो मिलता नहीं है। बीमारी में सभी मना-मनाकर खिलाते हैं, जब कुछ भाता नहीं है। स्वस्थ होने पर कोई मनाता नहीं, तब खाने की इच्छा होती है। साधु के साथ भी ऐसा होता है। जब अस्वस्थता है, भा नहीं रहा है तो दो-दो आर्यिकायें आहार करवाने जाती हैं। एक-एक मुनक्का भी मना-मनाकर खिलाती हैं और जब स्वस्थ है भा रहा है, 10 मुनक्का खा सकते हैं, तब कोई खिलाने वाला नहीं है। संसार में यही आश्चर्य है, विडम्बना है। उल्टा ही होता है। दुकान बंद करते समय कहते हैं, दुकान बढ़ा दो, चूड़ी फूट गयी तो कहते हैं चूड़ी बढ़ा गयी, संसारी जीव की ऐसी ही प्रवृत्ति है। वो पुरोहित भी अपनी ज्योतिष विद्या से पुरस्कार प्राप्त करते-करते, धनाढ्य बन गया था, सम्पन्न हो गया था, सुख भोगते-भोगते उसे वैराग्य आ गया, उसे तो संसार, शरीर, भोगों से वैराग्य आया था। लेकिन तुम्हें सच्चे देव, शास्त्र, गुरु से वैराग्य आता है। तभी वीतरागी देव को छोड़कर सरागी देव के पास जाते हो, पूजते हो, उन्हें वस्त्र पहनाते हो, मिठाई खिलाते हो, चूड़ियाँ पहनाते हो। नथ, हारादि आभूषण पहनाते हो, जबकि देव तो कभी वस्त्राभूषण पहनते ही नहीं हैं। आहार करते ही नहीं। उनके तो जन्म लेते ही कुछ आभूषण, वस्त्र आदि

रहना पड़ेगा। यदि ननिहाल जाये तो नाना, मामा का लाड़-प्यार मिले। कहना भी शोभाप्रद नहीं और वहाँ भी शोभा नहीं पाओगे। ननिहाल में बच्चों जैसी शोभा नहीं मिलेगी। वो दोनों मामा के यहाँ पहुँच जाते हैं और मम्मी ने जो कहा था, सब बातें बता देते हैं। आप हमारे मामा हैं, हम आपके पास पढ़ने आये हैं। मामा जानता था कि यदि इन्हें यहाँ रखूँगा तो ये पढ़ नहीं पायेंगे। वो कह देते हैं, मेरी कोई बहिन नहीं, कोई भानजे नहीं। जब बहिन ही नहीं तो उसके बेटे कैसे? फिर भी तुम पढ़ना चाहते हो तो पढ़ा दूँगा, तुम्हें जो भी सीखना है, सब सिखा दूँगा लेकिन तुम्हें भोजन भिक्षावृत्ति से करना होगा। वो दोनों सोचते हैं, हो सकता है माँ को याद नहीं हो, यह हमारा मामा नहीं है। हमें तो पढ़ना है, जैसा भी होगा पढ़ लेंगे। जब लक्ष्य पढ़ाई का है तो फिर कुछ भी नहीं दिखता है। मामा ने उनको सारी विद्याएँ ज्योतिष, लौकिक, व्यवहारिक, व्यापारिक सभी सिखाया, वो भी भिक्षा में जैसा मिलता (कड़ी, जली, रूखी, सूखी रोटी) खा लेते और पढ़ाई करते रहते। लोग दान में ऐसे ही देते हैं। वो पुरोहित पुत्र थे, उन्हें भिक्षा माँगने में शर्म भी नहीं आती थी, लेकिन संसारी जीव दान देते हैं और रोज-रोज देते हैं। पर वो जो पहली वाली रोटी फूलती नहीं, उसे या फिर जो अंत की कड़ी हो जाती है, बीच वाली घी लगी कोई नहीं देता है। बीच वाली दे देते तो फल भी सही मिल जाता। बीच की दे देता तो मन में विकल्प भी ज्यादा उठता है। मन में ऐसा लगता है कि अच्छा वाला दे दिया। उन दोनों को ऐसा कुछ भी विकल्प नहीं आया। वो तो मात्र पढ़ने में ही व्यस्त थे और पुरोहित के बेटे थे, बुद्धि तो थी ही- उन्होंने अल्प समय में ही अंक गणित, ज्योतिष आदि सभी का ज्ञान प्राप्त कर लिया और वापस आने की सोचने लगे। एक दिन उन्होंने गुरुजी से कहा - गुरुजी; अब हम वापस जा रहे हैं, हमें आपका आशीष चाहिए। गुरुजी कहते हैं, ठीक है तुम दोनों पढ़ लिखकर अब राजपुरोहित के पद के योग्य बन गये हो। बेटा एक बात कहता हूँ, मैं तुम्हारा मामा हूँ। तुम मामा के यहाँ रहकर पढ़ नहीं पाते, इसीलिए मैंने झूठ का सहारा लिया। दोनों ने सुनी, सुनकर बड़ा बेटा कहता है मामा आपने झूठ बोलकर हमारा हित ही किया है। हमें पढ़ा-लिखाकर विद्वान् बना दिया। लेकिन छोटे

भाई को गुस्सा आ गया, वो सोचता है यह हमारा मामा होकर भी हमें भिक्षा वृत्ति से ऐसा उल्टा-सीधा, रूखा-सूखा, कड़ा-कड़ा भोजन करवाया। फिर भी गुस्से में कुछ कहता नहीं है। वरन् बाह्य व्यवहारिकता निभाकर आ गया। आकर माँ को सारी बात बताई फिर राजसभा में जाकर राजा को बताया, तब राजा ने उनको पढ़ा-लिखा जानकर पुरोहित का पद दे दिया। पुरोहित का पद प्राप्त कर वो पुनः धन-सम्पदा को प्राप्त करके सुख से जीवनयापन करने लगे।

संसार में जिस किसी के पास थोड़ा धन आ जाता है तो उस धन को भोगते समय धन का मूल कारण क्या है? उसको भूल जाता है। धन की वृद्धि का कारण क्या है? भोगने की शक्ति कहाँ से मिली, वो सभी पुण्य के माध्यम से ही प्राप्त होती है। वह पुण्य बिना धर्म के प्राप्त नहीं हो सकता है। वह धर्म किसी मंदिर में या किसी विशेष जगह पर नहीं वरन् **धर्म का मूल भाव- संक्लेश नहीं होना है।** धर्म की प्राप्ति के लिए परिणामों की विशुद्धि आवश्यक है। वह परिणाम यदि कषाय के उग्रता के साथ रहे तो पाप का बंध होता है। यदि कषायें मंद रहीं तो पुण्य का बंध होगा। आगे कषाय समाप्त हो तो फिर कर्म क्षय में कारण बनता है। वो दोनों ही राजपुरोहित थे। अग्निभूति और वायुभूति-इनमें से बड़ा अग्निभूति पुरोहित पद पर रहते हुए प्राप्त भोग को धन -सम्पत्ति को छोड़ने की सोच रहा था। जैसा उसका नाम था, वैसा ही वह सोच रहा था, जैसे अग्नि सारे संसार को जला देती है। उसी प्रकार मैं भी ध्यान रूपी अग्नि से कर्म रूपी संसार को भस्म कर दूँ। पुरोहित कभी राजा के यहाँ बच्चे की कुंडली तो कभी युद्ध का मुहूर्त, तो कभी वन क्रीड़ा का मुहूर्त, शादी का मुर्हूर्त निकालते रहते थे, इससे राजा से विशेष रूप से पुरस्कृत होते रहते थे, इसीलिए भारी धन-वैभव-सम्पदा प्राप्त हो गयी थी। इन भोगों को भोगते हुए कभी तृप्ति नहीं होती है। शांति नहीं मिलती है। जीवन भर भी इन्हें भोगता रहूँ तो कभी इच्छाएँ समाप्त नहीं होगी है। समुद्र का पानी कितना भी बढ़ जाए, पर कभी बाढ़ नहीं आती है। सीमा का उल्लंघन नहीं करता है। समुद्र में नदियों का पानी आकर भी मिल जाए तो कभी तृप्त नहीं होता है। जितना भी आता जाय लेता चला जाता है। यह तृष्णा है। उसी प्रकार इच्छाएँ भी कभी समाप्त नहीं

शीर्ण नहीं होती है। भारत से भी बड़े-बड़े चैत्यालय विमान में होते हैं। देवों के धोती-दुपट्टा भी है लेकिन उनको पहनना नहीं पड़ता है, शुद्धि करना भी आवश्यक नहीं है, क्योंकि सप्तधातु का शरीर नहीं वैक्रियिक शरीर है। मलमूत्र नहीं होता है। पसीना नहीं आता है, अतः अशुद्धि नहीं होती है। सूर्य के विमान में जिनबिम्ब हैं। उसकी पूजा, दर्शन मकर-संक्रान्ति के दिन भरत चक्रवर्ती अपने 84 खण्ड के महल में सबसे ऊपर जाकर करता है। ये दर्शन उसे चक्षु इन्द्रियावरण का उत्कृष्ट क्षयोपशम होने से होते हैं। लेकिन रोज-रोज नहीं होते, मात्र वर्ष में एक दिन ही होते हैं। मकर-संक्रांति के दिन जब सूर्य बाहर की गलियों में आता है, तब अयोध्या नगरी से सीधा कोण बनता है/सर्कल बनता है तभी उसको दर्शन होता है और किसी को नहीं होते हैं। चक्रवर्ती को ही होते हैं। बाहुबली को भी नहीं हुए। तीर्थंकर दर्शन करते नहीं हैं। उनका क्षयोपशम तो उससे भी अधिक होता है, लेकिन तीर्थंकर कभी किसी को नमस्कार नहीं करते हैं। उनको तो देख करके ही मुनियों की शंका का भी समाधान हो जाता है। लेकिन मुनिराज उनके सामने (गृहस्थावस्था में है) नहीं जाते हैं, दूर से ही देखते हैं।

महावीर भगवान् को देखने दो चारण ऋद्धिधारी मुनि आये थे, जब भगवानबालक थे, तभी दूर से देखकर समाधान हुआ था। इसीलिए तभी से उनका नाम सन्मति पड़ गया। तभी से लोक में यह सूर्य नमस्कार की परम्परा चल गयी। लोक में जिसे धर्म माना जाता है। उस धर्म को यदि करता है। धर्म मानता है तो यह कुधर्म हो जायेगा। सूर्य के सामने यूँ ही पानी डालने से पाप नहीं लगता वरन् धर्म समझकर डालता है तो मिथ्यात्व का पाप लगता है। पूर्वजों को अर्घ्य देता है, खिलाता है तो कुधर्म है, नदी में नहाना अधर्म नहीं है, वरन् धर्म मानकर नहाना कुधर्म है। कुधर्म सेवन का पाप लगेगा। सती जो पति के साथ चिता पर जलना धर्म मानकर जल जाती है तो मिथ्यात्व है। और आत्मघात करती है, अग्नि में जलना तो मिथ्यात्व नहीं है। रोज नहाते हो तो कुधर्म का पाप नहीं और यदि संक्रांति को धर्म मानकर नहाते हो तो कुधर्म का पाप लगेगा। शिक्षक को नमस्कार करते हैं तो पाप नहीं, माता-पिता को

नमस्कार करते हैं चरण छूते हैं तो पाप नहीं, कुधर्म सेवन का पाप नहीं और किसी लिंगी को गुरु मानकर नमस्कार करते हो तो कुगुरु सेवन का पाप लगेगा। कुमत को धारण करने वाला है बताने वाला है तो वह गुरु नहीं हो सकता है गुरु तो-**विषयाशा-वशातीतो निरारम्भो परिग्रहः। ज्ञान, ध्यान तपोरक्तः तपस्वी सः प्रशस्यते।** की परिभाषा वाले हैं। लक्षण से गुरु बनाओ, मानो, नाम से नहीं लिंगधारी को भी गुरु मानकर पूजना पाखण्ड मूढ़ता है। भट्टारक आदि से साधर्मी का व्यवहार करना चाहिए, जयजिनेन्द्र कहो। यदि भय से भी पूजते हो, कहीं मंत्र-तंत्र न कर दें, कुछ और बिगाड़ न कर दें तो भी मिथ्यात्व का पाप लगेगा। आपत्ति में, भय में, आशा में भी मिथ्यात्व की पुष्टि नहीं करना चाहिए। वह सूर्य मित्र मामा सूर्य को अर्घ दे रहा था और अर्घ देते समय ही उसकी अंगूठी गिर जाती है, तालाब में ही पानी में उसे दिन भर तो मालूम ही नहीं चला संध्या समय के पहले ही अंगुली देखकर याद आती है। अरे अंगूठी कहाँ गयी? राजा की थी संभालने को दी थी तो उसने सोचा कहीं रखने की अपेक्षा (अंगुली) हाथ में पहनने से सुरक्षित रहेगी। अब क्या होगा? राजा से कहेंगे तो विश्वास नहीं करेगा। वो तो यही सोचेगा कि यह झूठ बोल रहा है और राजा को गुस्सा आ गया तो सजा भी मिल सकती है। ज्योतिषी तो था ही कुण्डली देखता है कुण्डली में लिखा था, मिलेगी लेकिन कहाँ मिलेगी यह उसमें नहीं लिखा होता है। कुण्डली में यह तो लिखा होता है कि संतान होगी लेकिन लड़का होगा या लड़की, सुंदर होगी या कुरूप, गुणवान होगी या निर्गुणी, यह नहीं लिखा होता है। मिलेगी तो लेकिन उसके पहले ही राजा ने माँग ली तो क्या होगा? उसे रोना आ रहा था, दुःख हो रहा था, क्या करूँ सोचता-सोचता छत पर जाता है तभी याद आता है कि जैन साधु बगीचे में विराजमान हैं, वो कभी झूठ भी नहीं बोलते, अन्यथा नहीं बोलते और उनकी बात कभी गलत नहीं होती है, उनके पास जाकर पूछता हूँ तत्काल ही चला जाता है, क्योंकि संध्याकाल हो रही थी और रात होने पर जैन साधु नहीं बोलते हैं। हाँ यदि आपातकाल अर्थात् किसी की समाधि हो रही हो या अस्वस्थता होने पर बोल सकते हैं। और वह उनके पास जाकर मुनि को नमस्कार करके

खा लूँ, पी लूँ, फिर क्या पता मिले नहीं मिले, ऐसा सोचने वालों को ही भोग छोड़ देता है। वो नहीं छोड़ पाता तो भोग उन्हें छोड़ देते हैं। एक नियम लेता है, सोचता है, आज से क्या अभी से पालन करूँ। एक सोचता है नियम लेना है तो आज अभी तो खा लूँ नियम कल से पालन करना है।

इधर वो सूर्य मित्र महाराज बिहार करते-करते उस कौशम्बी नगरी में आ जाते हैं। जनता बड़े उत्साहपूर्वक दर्शन करने आती है। जहाँ साधु कम आते हैं, वहाँ श्रावकों में साधु आगमन पर विशेष उत्साह रहता है। वो सोचते हैं, जितना मिले उतना ग्रहण करलूँ, 24 घंटा भी मिले तो इनसे धर्म की बात सीख लूँ। वहाँ की जनता भी ऐसी ही थी। सभी महाराज के दर्शन करने जा रहे थे। वो अग्निभूति भी सोचता है, अरे ये तो वही महाराज हैं, जिन्होंने हमें पढ़ाया है। मेरे गुरुजी हैं। हमारी पढ़ाई में इन्होंने ही सारी व्यवस्था की थी और इनसे पढ़कर ही तो हमें यह भोग सामग्री, धन सम्पत्ति सम्मान मिला, नहीं तो हम तो भूखे ही मरने लगे थे। और वह सम्मान, आदर की दृष्टि से गुरुजी के/मुनिमहाराज के दर्शन करने जाता है। लेकिन वायुभूति विपरीत ही सोचता है ये तो वही दुष्ट है, जिसने मामा होकर भी मामा होना, स्वीकार नहीं किया था, हमें भिक्षा के लिए मजबूर किया था, रूखी-सूखी खाते, देखता रहा था, लेकिन कभी भोजन नहीं कराया था। मैं नहीं जाऊँगा। निमित्त एक ही है, लेकिन उसके संयोग से भावों में अंतर है। एक पाप का बंध कर रहा है, एक पुण्य का बंध कर रहा है। निमित्त तो निमित्त ही होते हैं, निमित्त कुछ करते नहीं हैं, लेकिन निमित्त के बिना संसारी जीवों के परिणाम परिवर्तित नहीं होते हैं। नगर के बाहर बगीचे में मुनिराज विराजमान थे, जनता अपने-अपने हाथों में लौंग, बादाम, इलायची, अखरोट, काजू, अष्ट द्रव्य का थाल आदि लेकर दर्शन के लिए जा रही थी। किसी के पास धन होता है तो चढ़ाने का मन नहीं होता, किसी के पास मन होता है तो धन नहीं होता है। कोई रत्न, हीरा, पन्ना, मणियों, मूँगा आदि भी दर्शन करके चढ़ाने के लिए ले जा रहे थे। सभी अपनी-अपनी परिस्थिति व धन के हिसाब से और मन के हिसाब से भी ले जा रहे थे। सभी ने जाकर नमस्कार किया, तीन प्रदक्षिणा दी, महाराज ने भी सभी को

आशीर्वाद दिया और धर्मोपदेश भी दिया। धर्मोपदेश सुनकर सभी ने अपनी शक्ति अनुसार व्रत नियम लिए, किसी ने रात्रिभोजन का त्याग किया, किसी ने आलू-प्याज आदि जमीकंद का त्याग किया, किसी ने रात्रि में पानी का त्याग किया, किसी ने अन्य व्रतों को भी ग्रहण किया, अणुव्रत भी लिए, पूजन करने का, दर्शन करने का, अभिषेक करने का भी नियम लिया। उम्रानुसार भी व्रत - संयम ग्रहण कर लेना चाहिए। अग्निभूति को पहले से थोड़ा-थोड़ा वैराग्य था ही अब धर्मोपदेश सुनकर संसार, शरीर, भोगों से पूर्ण विरक्त हो गया, उसने गुरुजी से दीक्षा देने का निवेदन किया। प्रार्थना करते ही बात सभी जगह फैल गई। पहुँचते-पहुँचते उसके घर में पत्नी को मालूम चल गयी, उसे बड़ा विकल्प होता है। वो सोचती है अब अकेली कैसे रहूँगी, कौन कमायेगा, इतनी बड़ी जिंदगी है और वो अपने देवर से कहती है, भाई साहब चलो भैया को मनाने, अपन मनाकर उन्हें लौटा लाते हैं। अभी दीक्षा नहीं लेने दें। देवर कहता है उस दुष्ट मामा के पास मैं नहीं जा सकता। बड़ा साधु बन गया है। हमें तो इतने कष्ट दिए थे, भोजन भी पूरा नहीं खिलाया था। भाभी फिर कहती है, नहीं चलो तो सही, आप उनके पास नहीं जाना, भाई को मना लेना वो फिर मना कर देता है। थोड़ी देर बाद पत्नी का मोह फिर बोलता है - चलो न अब देवर को जोर से गुस्सा आ जाती है और वह भाभी को लात मार देता है। भाभी उस समय तो चुपचाप रह जाती है, लेकिन निदान कर लेती है कि मेरे पास वर्तमान में शक्ति नहीं है, लेकिन कभी भविष्य में जिस लात से तुमने मारा है, उसी को कष्ट पहुँचाऊँगी। कठोर तपस्या करने वाले भी निदान कर लेते हैं। ऊपर के स्वर्गों की यहाँ तक अनुत्तरों की भी आयु बाँध लेते हैं और फिर किसी विद्याधर या धरणेन्द्र या राजा महाराजा की विभूति देखकर निदान कर लिया कि मेरी तपस्या का फल यदि मिले तो मुझे भी ऐसी विभूति मिले तो उनकी भी आयु कम हो जाती है। निदान बाँधा है तो भोगना ही पड़ेगा। लेकिन कभी भी नीचे वाला ऊपर जाने की सोचे तो उसे ऊपर मिल ही जाय संभव नहीं है। करोड़पति रोड़पति तो बन सकता है। लेकिन रोड़पति करोड़पति बहुत मुश्किल से ही बन सकता है या कम ही बन पाते हैं। नगण्य है। **निदान करने से हजारों वर्षों की**

पर्याय में मिथ्या कुल में क्यों गयी? क्योंकि व्रतों के साथ सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया मात्र बहिरंग से दुःख के कारण व्रत स्वीकार किया था क्योंकि सम्यग्दृष्टि मरकर कभी स्त्री पर्याय में उत्पन्न नहीं होता है। स्त्री पर्याय मतलब मिथ्यादृष्टि ही आया है। इसका मतलब यह नहीं है और इसी प्रकार स्त्री पर्याय में आकर सम्यग्दृष्टि नहीं बन सकता है कि पुरुष पर्याय में जन्मा है तो निश्चित सम्यग्दृष्टि ही होगा। मिथ्यादृष्टि भी हो सकता है। स्त्री सम्यग्दृष्टि भी हो सकती है, फिर इस पंचमकाल में तो सम्यक्त्व को लेकर कोई भी जन्म नहीं लेता है। चाहे वह आचार्य श्री शांतिसागरजी हों या आचार्य ज्ञानसागरजी हों या विद्यासागरजी हों। सम्यग्दर्शन के साथ स्त्री और नपुंसक नहीं बनता है। नरक को छोड़कर क्योंकि नरक में मात्र नपुंसक वेद ही होता है। बाह्य में अणुव्रत ले लिए समाधि भी ले लो मुनि का समागम भी मिल गया, फिर भी अंतरङ्ग में परिणाम देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा के साथ सम्यग्दर्शन के साथ नहीं जुड़े। बाह्य में पाँचों पापों का त्याग कर दिया और यदि उनके साथ अंतरङ्ग क्रियायें जुड़ जाती हैं तो सम्यग्दर्शन हो जाता है। बाह्य में व्यापार व्यवसाय में लेन-देन का हिसाब-किताब रखा, खरीदा, बेचा लेकिन भाव का ध्यान नहीं रखा तो व्यापार में सफलता नहीं, लाभ नहीं होता है। भाव मुख्य है। भाव अकेला भी कुछ नहीं कर सकता है, घर में द्रव्य नहीं है और भाव आ गया तो भी लाभ होने वाला नहीं है। द्रव्य अपेक्षा से भाव और भाव की अपेक्षा से द्रव्य फल देने में समर्थ होता है। उस लड़की को भी बाह्य में व्रत, समाधि गुरु समागम मिल गया, लेकिन भाव उस रूप नहीं हो पाया था, तो फल कैसे मिल सकता है? इसीलिए पुनः स्त्री पर्याय मिली। गर्भ की वेदना-गर्भ से निकलते समय बच्चा सोचता है, मैं अब कभी ऐसे काम नहीं करूँगा ताकि मुझे ऐसी गर्भ की वेदना भोगनी पड़े। माँ भी सोचती है कि अब मैं ऐसे काम, पाप नहीं करूँगी कि स्त्री पर्याय में प्रसूति की वेदना सहन करनी पड़े। गर्भ से सुरक्षित बाहर निकल जाये अर्थात् पुण्यशाली आत्मा है। बड़ा बलवान है। उस समय सोचता है लेकिन समय निकलते ही फिर वही का वही काम करना शुरू कर देता है। उस वेदना को भूल जाता है। भूलना जीव का लौकिक स्वभाव है। भूलने के कारण ही लोक

में सुरक्षित रूप से जीता रहता है। कोई मर जाये तो एक दिन, दो दिन रो लिया अधिक से अधिक 12-13 दिन रो लिया, फिर भूल जाता है। फिर वही शुरू हो जाता है। कोल्हू के बैल की भाँति काम करता रहता है। सुबह उठता है दिन भर घूमता रहता है तो दिन निकल जाता है। समय का पता नहीं चलता है। आँखें खोलकर देखा तो वहीं है, जहाँ से उठा था। यदि एक स्थान पर खड़े रहो तो मन नहीं लगता है। संसारी प्राणी पूरे दिन में ऊपर से नीचे यहाँ से वहाँ होता रहता है। पहुँचता कहाँ है, वहाँ जहाँ से उठा था। साधु भी अपने आवश्यक को प्रतिदिन अर्हनिश करता है। संसारी प्राणी यदि इस घूमने से बाहर आ जाये तो कल्याण हो सकता है। साधु और संसारी के चक्कर में यही अंतर है। साधु का चक्कर-चक्कर समाप्त करने के लिए जबकि संसारी प्राणी का चक्कर-चक्कर बढ़ाने के लिए है।

जब साधु बाहुबली जैसे एक स्थान पर खड़े हो गये तो चक्कर समाप्त होकर संसार का अंत हो जाता है। कभी-कभी ऐसी विशुद्धि भी बढ़ाना चाहिए कि अपने को विशेष अनुभूति होने लगे। भगवान् और आप में यही अंतर है। भगवान् को सब कुछ दिखने के बाद, जानने के बाद भी कोई विकल्प नहीं होता है और हम भगवान् को देखकर भी विकल्प कर लेते हैं। सोच लेते हैं कि भगवान् वो ऐसा पापी है, उसको ऐसा फल दे दो उसका बिगाड़ कर दो। उसके अन्याय को समाप्त कर दो, अन्यायी को फल दे दो, और यदि उसके पापोदय से फल मिल गया तो खुश होते हैं। एक महिला बता रही थी, माताजी मैं रोज दो मिनिट तक भगवान् के सामने सोचती हूँ कि उसने मेरे साथ गलत किया, उसको भी गलत फल मिल जाए और उसको गलत फल मिलने लगा तो बड़ी प्रसन्न हो रही थी कि मेरी भावना सफल हो गयी अतिशय मानने लगती है। बाहर में दिख रहा कि भगवान् की कितनी तन्मयता से भक्ति करती है। और अंतरङ्ग में परिणाम कैसे हैं ? भगवान् के दर्शन करके अपूर्व-अपूर्व विशुद्धि बढ़ना चाहिए अंदर में ऐसी परिणति कि मुझे पहली बार भगवानके दर्शन मिले हैं और ऐसी अनुभूति हो जाये तो सम्यग्दर्शन हो जाता है। गुरु के दर्शन किए, जिनबिम्ब को देखा और शास्त्र पढ़ा तो ऐसा लगे कि यह सब मुझे पहली बार

शूली पर क्यों चढ़ाया जा रहा है? पिता ने कहा इसने अपने एक साथी की हत्या की, वो कहती है पिताजी जो हिंसा-जीव को मारना इस लोक में शूली और दुःख देने वाली है, परलोक में नरकगति का कारण है, उसे ही तो मैंने छोड़ा है तो क्या बुरा किया है। पिताजी ने कहा - अच्छा बेटी इसे रखकर 4 को छोड़ दो। थोड़ा आगे चले देखा कि एक पुरुष की जीभ काटी जा रही थी, उसने फिर पूछा, इसकी जीभ क्यों काटी जा रही है? पिता ने कहा - बेटा इसने झूठ बोला था, उसी कारण उसे यह सजा दी जा रही है। नागश्री ने कहा - पिताजी झूठ बोलने वाले का कोई विश्वास नहीं और राजा भी दण्ड देते हैं। परलोक में भी दुर्गति में जाना पड़ता है। पिताजी यही व्रत तो मैंने लिया है, झूठ न बोलने का, इसमें क्या बुरा किया, पिताजी कहते हैं ठीक है इसे रख ले, बाकी 3 छोड़ के आते हैं। आगे जाते-जाते एक आदमी मिला जिसे काला मुँह करके सिर मुड़ाकर गधे पर बैठाकर निकाला जा रहा था। कुछ सिपाही उसके पीछे थे, उसे कारागृह में ले जा रहे थे। बेटी फिर पूछती है, इसको ऐसा क्यों किया जा रहा है? पिताजी कहते हैं, चोरी की है डाका डाला है। इसीलिए दण्ड मिला है। वो कहती है पिताजी यही चोरी न करने का व्रत मैंने लिया है, इसमें क्या बुरा किया है? पिताजी कहते है ठीक है बेटी इसे भी रख लो और दो बचे उनको छोड़ दो। आगे जाते-जाते देखती है एक स्त्री को एक व्यक्ति मार रहा था, उसको देखकर वह पूछती है कि इसको इतनी निर्दयता से बाल पकड़कर घसीट कर क्यों मार रहा है, तब पिताजी कहते हैं कि बेटा इसने पर पुरुष का सेवन किया है। रात-रात भर दूसरे पुरुषों के घर रहती है। व्यभिचारिणी है। पिताजी व्यभिचारी का मन सदा भ्रांत रहता है, लोक में निंदित होता है। यही व्रत तो मैंने लिया है इसमें क्या बुराई है? पिताजी कहते हैं ठीक है बेटा इसे रखकर बचा एक व्रत तो वापस कर आते हैं। कुछ आगे जाते-जाते एक व्यक्ति को सिपाही पकड़कर ले जा रहे थे तो वह फिर पूछती है कि पिताजी इसे पकड़कर क्यों ले जा रहे हैं? तब पिताजी कहते हैं कि इसने तृष्णा के कारण अन्याय अनीति से लोगों को, गरीबों को लूट-लूटकर धन इकट्ठा किया। इसीलिए इसे ले जा रहे हैं। वो कहती है, पिताजी इस तृष्णा को समाप्त करने

के लिए तो मैंने परिग्रह परिमाण व्रत लिया है। यह तो अच्छा ही है। पिताजी कहते हैं इसे भी रख ले। लेकिन हम उस नंगे बाबा को देखते हैं, उसने किस अधिकार से तुम्हें ये व्रत दिए हैं।

वह ब्राह्मण महाराज के पास जाकर कहता है मेरी बेटी को व्रत देने का क्या अधिकार है। नंगे बाबा बोल तूने मेरी बेटी को अपने मंत्रजाल में क्यों फँसाया? मुनिराज अवधिज्ञानी थे। वे कहते हैं कि यह तेरी नहीं मेरी बेटी है। ब्राह्मण को और गुस्सा आ जाता है कि अभी तो व्रत ही दिए थे अब तो बेटी भी अपनी बता रहा है, तुम झूठ भी बोलते हो? मुनि कहते हैं- नहीं हम झूठ नहीं बोलते यह सच है कि यह मेरी बेटी है वो फिर कहता है मैंने नागदेवता को पूजपूज कर तो यह संतान पायी है और इसे ही यह नंगा बाबा अपनी बेटी कह रहा है। चल झूठा कहीं का। मैं राजा के पास जाकर न्याय कराऊँगा। और वह दौड़ता-दौड़ता राजा के पास जाता है राजा को कहता है कि राजन् जिसे आप गुरु मानते हो पूजते हो वो ही नंगा बाबा मेरी नागश्री बेटी जिसे पूरा नगर जानता है, फिर भी वह उसे अपनी बेटी कहता है। राजा को सुनकर आश्चर्य होता है, मुनि-महाराज की बेटी कैसे हो सकती है? यह तो अभी छोटी है और वो बहुत पुराने महाराज हैं। राजा कहता है चलो वहीं उन्हीं के पास न्याय होगा। समाचार सारे नगर में फैल गया कि ऐसा हो गया है तो जनता विशेष रूप से सुनने पहुँचती है। जाकर वहाँ देखा तो महाराज अभी भी कह रहे थे कि यह मेरी बेटी है वो ब्राह्मण कहता है मेरी बेटी है, तब मुनिराज कहते हैं- तेरी बेटी है तो तूने इसे क्या-क्या पढ़ाया है? मैंने नहीं पढ़ाया तो क्या आपने पढ़ाया है? मुनि कहते हैं, हाँ मैंने पढ़ाया है और वो कहते हैं बेटा नागश्री ले मेरा आशीर्वाद और हाथ उसके सिर के ऊपर रख देते हैं, कहते हैं सुना, मैंने तुम्हें क्या-क्या पढ़ाया था, नागश्री एक साथ सारे विषय लौकिक भी और पारलौकिक भी सुना देती है। सभी को आश्चर्य होता है ये क्या है? उसे जातिस्मरण से सभी याद आ जाता है। जनता जो अपने सभी काम छोड़कर आयी थी, क्योंकि जब कभी ऐसी विशेष घटनाएँ होती हैं तो संसारी प्राणी को समय मिल जाता है, बातें भी याद रह जाती हैं। लेकिन धर्म सुनने, पढ़ने, प्रवचन सुनने के लिए समय नहीं

जाते-जाते रुक गयी। और नरक लेकर चली गयी। एक पल/क्षण का गुस्सा भी 12 योजन की सोने की द्वारिका नगरी को जलाकर स्वयं को भस्म कर देता है। एक सैकेण्ड तो बहुत बड़ा होता है। चुटकी बजाते ही निकला काम करके आ गया। ऋद्धियाँ ऐसी ही हैं। नाम लेने में समय लग सकता है। लेकिन काम करने में समय नहीं लगता है। ऐसे ही सभी गुणस्थानों का काल, अंतर्मुहर्त है। फिर भी हजारों बार 6 वें, 7 वें में झूला फिर 8 वें में, 9 वें में, 10 वें में, 11 वें में पहुँचा पुनः 11 वें से 10 वें में आया, फिर 9 वें में फिर 8 वें, फिर सातवें में आया और हजारों बार 6 वें, 7 वें में झूला। फिर पाँचवे में फिर चौथे में इतना सभी होने में मात्र 5 सैकेण्ड ही लगते हैं। मात्र अंतर्मुहर्त में यह सभी काम हो गये। इतने कम समय में भी हम छल कर लेते हैं। मंदिर में पूजा करते समय एक सैकेण्ड भी मन लग गया तो जीवन सुधार की तरफ और एक सैकेण्ड भी इधर-उधर चला गया है तो भाव बिगड़ गये, भव बिगड़ गया।

भावों की, परिणामों की इतनी सूक्ष्मता कि हमें समझ में नहीं आ पाता, कब भाव हुए कब चले गए और उतने में भी कर्म बंध कराकर चले गए। कब कौन से जीव में भावों का क्या परिणमन हो जाये, उस वायुभूति के जीव के परिणाम दीक्षा लेने के हो गए। गुरुजी के पास निवेदन कर दिया, दीक्षा देने के लिए और उस ब्राह्मण ने भी दीक्षा की प्रार्थना कर दी, जो जैनधर्म का विरोधी था, नंगे बाबा से क्रोधित होकर लड़ने गया था। भाव परिवर्तन हो गए। राजा भी दीक्षा लेने के लिए तैयार हो जाता है। राजा के अनुसार ही प्रजा चलती है। यदि राजा व्यसनी होता है तो प्रजा की प्रवृत्ति भी व्यसनों की तरफ होती है। यदि राजा धर्मी, न्यायप्रिय, वात्सल्य वाला होता है तो प्रजा भी इन गुणों के अनुसार चलती है। राजा जैनी बन गया तो सभी प्रजाजन भी जैन धर्म को स्वीकार कर लेते हैं। राजा दीक्षा ले रहा था तो प्रजा में से बहुत से लोग भी दीक्षा लेने को तैयार हो गये। दीक्षा कैसी होती है? सर्वप्रथम शिष्य गुरुजी से निवेदन करता है तत्पश्चात् गुरु संस्कार करते हैं, फिर 28 मूलगुणों का विवेचन करते हैं - 5 महाव्रत - अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह महाव्रत।

अहिंसा - मुनि किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करते हैं, अजीव की

हिंसा नहीं अर्थात् कागज वस्त्रादि भी नहीं फाड़ते हैं। **सत्य** - हमेशा सत्य बोलते हैं, प्राण भी चले जायें तो भी कभी असत्य नहीं बोलते हैं। **अचौर्य** - मिट्टी, पानी और तिनका तक भी बिना पूछे नहीं लेते हैं। **ब्रह्मचर्य** - एक भी स्त्री नहीं रखते हैं, संसार की सभी स्त्रियों से सम्पर्क नहीं रखते हैं। **अपरिग्रह**- मतलब शास्त्र, पिच्छी, कमण्डलु के अलावा कोई भी वस्तु अपने पास नहीं रखते हैं। जिनवाणी को सुरक्षित सजाकर रखना चाहिए लेकिन इतनी भी नहीं कि कोई चोरी कर ले। और इतनी अव्यवस्थित भी नहीं रखना चाहिए कि पढ़ने का ही मन न हो।

पाँच समिति - **ईर्या समिति**- सूर्य के प्रकाश में आगे की चार हाथ जमीन देखकर चलना। **भाषा समिति** - हित, मित, प्रिय बोलना और आवश्यकता पड़ने पर हितकारी कठोर वचन भी बोल सकते हैं। **एषणा समिति** - रसों को छोड़कर 46 दोष टालकर 32 अंतराय टालकर श्रावक के घर शुद्धिपूर्वक भोजन करना। आगमानुसार अल्प आहार करना/ साधु को कभी स्वाद लेकर नहीं खाना चाहिए और बिना स्वाद लिए भी नहीं खाना चाहिए। अर्थात् स्वाद रसनेन्द्रिय की पुष्टि के लिए नहीं वरन् अपने नियम, व्रत पालन करने के लिए स्वाद लेकर ही खाना चाहिए तभी तो त्याज्य वस्तु का नियम पलेगा। यद्यपि त्याज्य वस्तु पहले से ही निकाल देते हैं। फिर भी रागी/ मोही जीव भी होते हैं।

एक बार एक महाराज का केशलोंच हुआ दो बहिनें पारणा में हलुआ बनाकर ले गयी। महाराज का मीठा का त्याग था, वो बाहर से आई हुई बहिनें थीं, एक श्रावक के यहाँ मुनक्का का हलुआ बनाने गई, लेकिन मुनक्का कम पड़ गये तो उन्होंने सोचा बूरा डाल देते हैं, थोड़ा-सा बूरा उन्होंने माँगा तो उसके यहाँ बना ही नहीं था क्योंकि दोनों महाराजों का मीठे का त्याग था। अब क्या करें तभी वह घर की महिला मंदिर चली गयी, उन्होंने सोचा बड़े दानों की शक्कर है और उसे घोलकर छानकर डाल दी। हलुआ महाराज को चलाया, महाराज ले नहीं रहे थे, जिद्द करके चलाया बचा हुआ दूसरे महाराज को चला दिया वो भी मना करें तो भी जबर्दस्ती चलाया। बाद में आकर महाराज ने पूछा

सकता है, छिपकर अकेले भी नहीं डाल सकता है। साधु की सभी चर्या पराधीन होती है। रोग हो जाये, सिरदर्द, पेटदर्द, बुखार या कोई भी बीमारी हो तो उसे श्रावकों को बतानी पड़ती है, श्रावक ही औषधि कराते हैं। साधु कहाँ से करेगा, वह तो परिग्रह का त्यागी है। वैसे कहा जाता है कि साधु स्वतंत्र है, लेकिन वास्तव में देखा जाये तो साधु एक क्षण के लिए भी स्वतंत्र नहीं है। पूरे समय कोई न कोई साथ रहता है। साधु की कोई भी क्रिया अकेले में नहीं होती है। साधु अपने मन का भी नहीं खा सकते हैं और अपने मन से भी नहीं खा सकते हैं। बैठे तो भी, चले तो भी, सोये तो भी, खायें तो भी अकेला नहीं रह सकता है। शरीर की सुरक्षा के लिए श्रावक औंगुन डालते हैं। लेकिन वो कैसे कितना डालें। इतना अधिक नहीं कि बाहर ही निकलने लगे, इतना कम भी नहीं कि गाड़ी चूँ-चूँ ही करने लगे। आहार देना रत्नत्रय दान के बराबर है। पद्मनंदीपंचविंशतिका में कहा है-''साधु बनते ही बीमार क्यों हो जाते हैं? जबकि एक बार शुद्ध भोजन उबला हुआ खाते हैं। उबला हुआ पानी पीते हैं और ठूँस ठूँसकर भी नहीं खाते हैं। तीन भाग भोजन से भरते हैं, एक भाग मात्र खाली रखते हैं, फिर भी बीमार क्यों हो जाते हैं तो कहते हैं, श्रावक समझ नहीं पाता है कि कब कौन-सा मौसम है, क्या प्रकृति है शरीर की और ठंडे के ऊपर गरम, गरम के ऊपर ठंडा देने से, घी के ऊपर पानी पिला दिया तो कफ हो जाता है। श्रावक तो सोचता है, कहता है मैं जो दे रहा हूँ वो ले लो जो हो तुम्हारा, वो तुम जानो साधु हो तो सहन कर लो। कभी-कभी तो यहाँ तक कह देते हैं कि हमारी गारण्टी आप ले लो कुछ नहीं होगा अरे तुमने तो कह दिया, होने पर तो तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ेगा वेदना तो साधु को होगी। इसीलिए बीमार हो जाते हैं। श्रावक दशलक्षण में जब एकाशन करते हैं तो 1 माह में खर्च होने वाला घी 10 दिन में ही समाप्त हो जाता है। एक बार ही खाते हैं तो भी इतना घी खा लेते हैं। सामान्य से तीन बार खाने में भी इतना खर्च नहीं होता है। यह धर्म नहीं हैं, धर्म का नाटक है। वास्तव में धर्म करोगे तो फल मिलेगा। आजकल जो एकाशन करते हैं तो 1.30 घंटा पहले दूध/चाय पी ली फिर वहीं बैठकर काम कर लिया या न्यूज पेपर पढ़ लिया फिर भोजन किया, बाद में फिर

आधा घंटा विश्राम कर लिया या इधर-उधर की बातें करके पुनः दूध/चाय/ पानी पी लिया। यह एकाशन न होकर व्रत की/ धर्म की मजाक है। धर्म की प्रतिष्ठा/प्रभावना नहीं कर सकते तो कम से कम बदनामी तो नहीं करो। धर्म का गौरव बनाकर रखना चाहिए। वो महाराज अपने व्रतादि नियमानुसार आहार करते थे। कोई अनशन तप रस परित्याग वृत्ति परिसंख्यान तप भी करते थे। एक बार कुण्डलपुर में एक महाराज ने वृत्ति परिसंख्यान किया। असमय में आहार पर निकले और वो भी बड़े बाबा के यहाँ से करीब 3-4 बजे निकले, मुद्रा लेकर तब सबने देखा। अरे महाराज आहार पर निकल रहे हैं। श्रावकों ने पड़गाहन कर लिया, अब क्या आहार दें तो सभी ने यहाँ वहाँ अर्थात् पड़ोस से दूधादि अन्य चीजें ला लाकर श्रावकों ने आहार करवाया था। महाराज का पुण्य था तो आहार हो गया और यदि कोई नहीं पड़गाहता श्रावक तो उपवास कर लेते। श्रावक कभी-कभी महाराज को आहारदान देने के अलावा ऐसी वस्तुएँ भी दे देता है, जो अनुपयोगी होती हैं। एक जगह चतुर्मास के बाद महाराज का विहार हो रहा था तो एक श्रावक ने रंगीन टी.व्ही. लाकर दी, वह बड़ा भक्त था, महाराज को कोई फोन देता है तो कोई फ्रिज देता है, फिर कोई इसको रखने के लिए ट्रक दे देगा, यह साधु को बिगाड़ने में कारण हैं। ऐसे ही एक महाराज को 15000 रू. का पेन दे दिया और महाराज आहार करने गये तो किसी ने सोचा छोटी सी चीज की चोरी और 15000 पूरे मिल जायेंगे उस पाप में निमित्त बने तो पाप लगेगा। इसीलिए देते समय ध्यान रखना चाहिए कि यह वस्तु साधु कह भी दे तो मौन रखना चाहिए कि सामने ही नहीं जाना चाहिए। और भी आहार देते समय शुद्धि का, मर्यादा का भी ध्यान रखना चाहिए। महाराज तो तीन बार शुद्धि बुलवा लेते हैं, एक बार घर के बाहर, एक बार भोजनशाला में प्रवेश करते समय और आहार लेते समय और विश्वास करके आहार लेते हैं। अब यदि तुम अभक्ष्य देते हो तो पाप तुम्हें लगेगा। शुद्धि तुमने बोली है। एक शुद्धि अशुद्ध तो तीनों ही अशुद्ध हो जाती हैं। आहार अशुद्ध तो झूठ बोलकर दिए गए आहार से वचन की अशुद्धि। मन में तो पहले ही छल आया तो अशुद्धि हो गयी काय तो वैसे ही अशुद्ध है। इसीलिए तो

तुम्हें दान का पुण्य सही मिले। सेठानी सोचती है, पति चले जायेंगे तो बेटा रहेगा और बेटा जायेगा तब मैं वृद्ध हो जाऊँगी मरने जैसी हो जाऊँगी। अच्युत स्वर्ग से च्युत होकर वह सेठ सेठानी के यहाँ गर्भ में आता है।9 माह बाद जन्म होता है। सेठ ने जैसे ही बेटे का मुँह देखा उसे ही अपना सेठ का पद देकर दीक्षा लेने वन में चले गये। वह बेटा बहुत पुण्यशाली था, उस सेठानी ने उसे पूर्ण राजवैभव जैसा रखा पालन-पोषण किया। उस बेटे ने कभी सूर्य नहीं देखा था, वह हमेशा रत्नों की ज्योति में ही रहता था, उसका गृह इतना बड़ा था कि एक नगर की भाँति सारी व्यवस्थाएँ उसमें थीं। बगीचा, सरोवर, जल क्रीड़ा के लिए फब्बारे घर में ही बाजार, दुकानें थीं, वहीं वह घूमता था, क्रीड़ा करते थे। उसका भोजन भी सामान्य नहीं था, चावल खाता था, लेकिन चावल भी शाम को कमल में रखते थे, प्रातः वो फूल भी जाते थे और खुशबू वाले भी बन जाते थे, उसका भोग वो करता था, बहुत ही कोमल था इसीलिए उसका नाम सुकुमाल रखा था। कभी वह घर से बाहर नहीं निकला था, घर में ही सभी कुछ था। एक दिन एक व्यापारी उस नगर में रत्न कम्बल बेचने आया, वह राजमहल में लेकर जाता है, राजा को कम्बल दिखाकर मूल्य बताता है तो राजा उसे नहीं खरीद पाता है। मूल्य था एक कम्बल का एक करोड़ दीनार। वह व्यापारी उदास होकर वापस जा रहा था कि सेठानी ने उसे देखा और पूछा कि क्या हो गया तो व्यापारी कहता है, मैं रत्नकम्बल बेचने आया था, राजा के यहाँ गया था लेकिन राजा नहीं खरीद पाया तो फिर नगर में कौन खरीद पायेगा। सेठानी कहती है दिखाओ और मूल्य बताओ देखकर मूल्य सुनकर सेठानी ने रत्नकम्बल खरीद लिया। व्यापारी भी आश्चर्य चकित था। राजा से भी अधिक धनवान सेठ है। सेठानी रत्नकम्बल सुकुमाल को ओढ़ाती है तो सुकुमाल कहता है, मुझे चुभता है। तो सेठानी उसे एक दर्जी को देकर अपनी 32 बहुओं को जूती बनवा देती है। इतनी अच्छी चीज की जूती बनवाना मतलब कोई मूल्य नहीं था, उसकी दृष्टि में। एक दिन एक बहू जूती पहनकर ही छत पर घूम रही थी और घूमते-घूमते जूती उतार कर बैठ जाती है, तभी एक गिद्ध पक्षी उस जूती को माँस का पिण्ड समझकर उठा लेता है, क्योंकि

उसमें लाल रत्न जड़े हुए थे। और वो उड़ते-उड़ते ले जाकर वेश्या के यहाँ जाकर गिरा देता है। तो वेश्या उसे देखती है तो सोचती है निश्चित यह जूती रानियों की होगी और वो लाकर राजा को देती है। राजा उस जूती को देखकर सोचता है यह तो उसी रत्नकम्बल की जूती है, मेरे राज्य में मेरे से अधिक धनाढ्य कौन है, जिस रत्नकम्बल को मैं नहीं खरीद पाया और उसने खरीद लिया। आखिर कौन है, वो सभी नौकरों को उस धनवान को ढूंढने के लिए कहता है

संसारी प्राणी को जितनी-जितनी अनुकूल सामग्री मिलती है। उतनी-उतनी भोगों की तृष्णा वृद्धि को प्राप्त हो जाती है। जितना-जितना भोगों को भोगा जाता है, उतना-उतना ही कर्मों का बंध होता जाता है। जितना-जितना कर्म का बंध होता है। उतना-उतना कर्म का उदय आता है और फिर कषाय से, संक्लेश परिणाम से, तेरा मेरा करता है, कर्म का बंध होता है, इस प्रकार से अनंतानंत काल व्यतीत कर दिए। यही क्रम चलता रहता है। कभी अच्छे परिणाम हो गये तो पुण्य का उदय होने से भोगोपभोग की सामग्री मिल जाती है, धन वैभव को भोगने लगता है और संक्लेश परिणाम हो गये तो सारी भोग सामग्री समाप्त हो जाती है। पता ही नहीं चलता कहाँ चली जाती है। जो व्यक्ति दुःख से घबराता है, उसे सुख की प्राप्ति हो जाती है, जो सुख से घबराता है, उसे दुःख की प्राप्ति नहीं होती है। सुख-दुःख ये सभी पौद्गलिक हैं। आत्मा के गुण नहीं हैं। पुद्गल के निमित्त से कर्म पौद्गलिक हैं। सुख-दुःख शरीर, वचन, मन, श्वासोच्छ्वास में पुद्गल कृत जीव के ऊपर उपकार है। बोलने की शक्ति मिली वचन वर्गणा के माध्यम से तो वचन वर्गणा पौद्गलिक है लेकिन यदि जीव नहीं है तो पौद्गलिक वचन वर्गणा कुछ भी नहीं कर सकती हैं। जब अंतरङ्ग में लोभ कर्म का उदय, वीर्यान्तराय एवं ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम होगा तभी जीव बोल पाता है, लेकिन पुद्गल के संयोग से ही। सुख-दुःख की अनुभूति कौन करता है। आत्मा करता है, लेकिन जड़ के निमित्त से। जब कभी व्यक्ति को भोग मिलते हैं तो सोचता है, यह भोग मुझे पहली बार मिले हैं। इसके पहले कभी नहीं मिले हैं, मैं इनका जितना भोग कर

लिए तो जाना ही है, व्यवहार भी निभाना है। लेकिन मैं जाऊँगी तो बहुएँ भी जायेंगी, बहुएँ जायेंगी तो सुकुमाल को पता चल जायेगा। सेठानी विचार कर रही थी, क्या करें जाना भी है और इन सबको पता भी नहीं चले वो बहुएँ जब आहार देना ही नहीं जानती थी, लेकिन आज तो श्रावक जानते भी हैं, वे भी साधु के सामने आने पर घबराने लगते हैं, साधु सिंहवृत्ति से तो आता है लेकिन सिंह समान क्रूर नहीं दयालु होते हैं, आकुलता नहीं करना चाहिए। अपने ही तो साधु हैं, सावधानी रखना चाहिए। वो बहुएँ इन सबसे अपरिचित मात्र भोग ही जानती थी। वह सेठानी एक दिन किसी को भी बिना बताए ही महाराज के पास जाती है, नमस्कार करके कुशलक्षेम पूछती है। फिर कहती है – महाराज आप सब जानते हैं, आपको आगे पीछे की सब मालूम है। मेरे पति तो मुनि बन ही गये हैं, बेटा भी यदि आपका एक शब्द सुन लेगा तो वो भी चला जायेगा। इसीलिए आप। आगे कहती नहीं हैं। जाने के लिए कैसे कहें चातुर्मास पास में है। रुकने के लिए भी कैसे कहें बेटा चला जायेगा। फिर वो कहती है। महाराज आप यहाँ वर्षायोग करना चाहते हैं, करें लेकिन आप मौन रखना, बोलना नहीं, मैं आपसे जाने के लिए भी कह नहीं सकती, क्योंकि दूसरे गाँव में जाओगे, वहाँ आहारादि की परेशानी होगी। चर्या में कठिनाई आयेगी। इसीलिए आप मौन रखो यही श्रेयस्कर है।

एक श्रावक/गृहस्थ साधु को नियम दिलाकर आ गया। श्रावक नहीं चाहता है फिर भी साधु करता है तो चोरी का पाप लगता है। इसीलिए साधु ने भी मान लिया। कभी तुम्हारे साथ भी ऐसी घटना हो जाये कि साधु को रोकना भी नहीं है, जाने के लिए कहें कैसे तो डायरेक्ट कहना नहीं, सूचना चिपका देना। एक बार माताजी के साथ भी ऐसा ही हुआ था, पूज्य माताजी वहाँ पहुँच गयीं, वर्षायोग का समय था। उनको करवाना नहीं था, सो उन्होंने सूचना चिपका दी कि 1.30 बजे विहार है। पूज्य माताजी ने पढ़ा था, बड़ा आश्चर्य हुआ और वो 1 बजे या 1.15 बजे ही विहार कर दिया। पंचमकाल के श्रावक हैं। पंचमकाल के मुनिराज हैं, शहर में रहना पड़ता है। जंगल में रहते तो ऐसी परिस्थिति आती ही नहीं है। सेठानी बताकर आ गयी, मुनिराज ने भी वर्षायोग

की स्थापना कर ली – सभी नगरवासियों के यहाँ आहार हो रहा था, लेकिन सेठानी के यहाँ आहार नहीं हुआ। वर्षायोग चल रहा है।

संसारी प्राणी हमेशा पर की खोज में लगा रहता है। मैंने क्या, कितना, कैसा किया यह नहीं सोचता है। बल्कि यह सोचता है कि दूसरे के पास कितना है, कैसा है, क्यों है, कहाँ से लाता है कहाँ सुरक्षित रखता है।

एक सेठजी थे 12 वर्ष तक कमाने के बाद अपने घर वापस लौट रहे थे, उसने सोचा इतना धन पैसा सम्पत्ति कैसे ले जायेंगे? रास्ते में कुछ हो गया तो अतः सारी सम्पत्ति से एक हीरा खरीद लिया और बुद्धिपूर्वक सरलता से यात्रा करने लगा। रास्ते में उसे एक ठग मिलता है उसने सेठजी से इधर-उधर की बातें कहीं कहाँ से आये हो, कहाँ जा रहे हो, क्यों आये थे, बातें करके सभी जानकारी ले ली, यह भी जान लिया कि इसके पास हीरा है। और वो ठगने के हिसाब से ही सेठ से कहता है, मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ, सेठ कहता है चलो, चलना है तो। वह ठग रोज सेठ के सोने के बाद हीरा ढूंढता है। सभी जगह देखता लेकिन उसे हीरा नहीं मिलता, दिन में सेठ की जेब में रखा रहता। जाते-जाते सेठ ने कहा अब हमारा गाँव पास में आ गया। अब हम बिछुड़ जायेंगे। ठग कहता है सेठजी बिछुड़ जायेंगे तो कोई बात नहीं, अब तुम्हारा गाँव तो आ ही गया है। तुम मुझे ये बताओ मैं रोज रात को तुम्हारा हीरा ढूंढता लेकिन मिलता नहीं था और सुबह तुम्हारे पास देखता आखिर तुम कहाँ रखते थे। सेठ कहता है तुम्हारे सामान में। संसारी प्राणी ऐसा ही है। वह अपना सामान नहीं ढूँढता वरन् दूसरों के पीछे पड़ा रहता है। यदि अपना सामान ढूंढ ले तो शाश्वत् सुख को प्राप्त कर ले। दूसरे की चीज दुर्लभ दिखती है। अपनी है तो हम कभी भी उपयोग कर लेंगे दूसरे की पहले कर लें, दूसरी की कब मिलेगी। वह राजा भी सोच रहा था, इतनी सम्पत्ति वाला है, कौन? राजा के पास भी इतनी सम्पत्ति नहीं है गुप्तचर, मंत्री, सैनिक ढूँढ रहे हैं, पास-पड़ोस में हम सभी जानते हैं, कोई इतना धनवान नहीं है। खोज करते-करते किसी को याद आती है कि वो सेठजी हैं, उनके घर जाते हैं, राजा सोचता है कि सेठजी तो दीक्षा लेने चले गए थे, उनकी पत्नि के पास कहाँ इतनी सम्पत्ति कि वह रत्नकम्बल खरीद

ऐसी है कि इसने अपने जीवन में पहली बार दीपक की ज्योति देखी है। तो क्या अंधेरे में रहता है? नहीं हमेशा रत्नज्योति में ही रहता है, इसीलिए आँखों से पानी आ गया। और पैर की बात है तो मैंने आपके आने पर मंगल स्वरूप सरसों बिखेरी थी, वो इसे चुभ रही थी क्योंकि यह कभी मखमल से नीचे नहीं उतरा है जमीन का स्पर्श नहीं किया है। तीसरी बात पेट की तो यह भोजन शाम को कमल पत्र में भीगे चावल ही खाता है। आज आपके आने से मैंने उसमें और सामान्य चावल मिला दिए तो वह उन भीगे हुए चावलों को बीन-बीन कर खा रहा था। राजा को बड़ा आश्चर्य होता है कि इतना धनाढ्य और इतना सुकुमाल हमारे नगर में है। यह अब अपने घर का ही सुकुमाल नहीं अवन्ती सुकुमाल है। राजा उसे राज उपाधि से अलंकृत करते हैं। इसके बाद राजा उसके बाग-बगीचे, सरोवर, बाबड़ी देखता है, क्रीड़ा के स्थान देखता है तो वह राजा क्रीड़ा करता है तो उसकी अंगूठी बाबड़ी में गिर जाती है, उसे ढूँढने जैसे ही वह बावड़ी में देखता है तो पत्थर मिट्टी के स्थान पर आभूषण हीरा जवाहरात दिखते हैं। वह उसकी नौकरानी से पूछता है, यह क्या है? तब वह बताती है एक बार आभूषण पहनने के बाद उसे दुबारा नहीं पहनते हैं, इसीलिए उन्हें कहाँ रखें, किसे देवें, सभी को खूब दे भी दिए हैं, फिर भी बचे तो इसमें डाल दिए हैं। राजा विचार करता है कि यह सब पूर्वोपार्जित पुण्य का फल है। इसने पूर्व भव में नागश्री के समय इतनी तपस्या की थी, उसके फल में यह सब मिला है।

सुकुमाल के घर पर राजा आए। उन्होंने सुकुमाल की तीन बीमारियाँ पकड़ लीं, जो वैद्य डॉक्टर ने नहीं पकड़ी, वो राजा ने पकड़ ली। आजकल तो राजा भी नहीं पकड़ पाता है। राजा को उसकी माँ ने समाधान भी दे दिए थे कि बीमारी नहीं है, यह तो इसकी कोमलता के कारण ऐसा हुआ। वह जमीन पर पैर नहीं रखता था, तो कहाँ चलता होगा। आज लोग भी तो नहीं रखते हैं, धनवान हैं तो मोजे पहने रहते हैं, चप्पल बाहर भी और भीतर भी यहाँ तक की रसोईघर में भी चप्पल पहनकर जाते हैं, भोजन भी करते हैं। सोचते हैं, शुद्ध हैं, चप्पल लेकिन चप्पल तो कभी शुद्ध नहीं होती है। चप्पल है तो चप्पल ही है

मंदिर में टोपी पहनकर जाते हैं और चप्पल उतारकर जाते हैं, लोक में जब कोई गलत काम करता है तो उसे जूते की माला पहनाकर घुमाते हैं। नजर भी जूते से मारकर उतारी जाती है। अर्थात् जिसको नजर लग गयी है, उसके सिर पर जूते को फिराकर जमीन पर मार देते हैं। बीमारी भी जूते से मारकर भगायी जाती है। गुस्सा आता है तब भी जूते से बच्चों को मार देता है। राजा को समाधान मिल गया था। राजा महाराजा चक्रवर्ती अपने घर में ऐसा भोजन करते हैं, लेकिन वैराग्य आने पर शरीर आत्मा का अलग-अलग ज्ञान होने पर कुछ नहीं दिखता है। जैसा है सो ठीक है। भेदविज्ञान शब्दों में नहीं वरन् प्रैक्टीकल में आना चाहिए। तीर्थंकर कभी भी माँ का दूध नहीं पीते। सारे के सारे भोग स्वर्ग के होते हैं, फिर भी मुनि बनकर आहार सामान्य श्रावक के यहाँ ही आहार करते हैं। सुकुमाल इतनी अधिक भोग सामग्री होने पर भी पूजन करते थे, उनके घर में ही रत्नमयी जिन चैत्यालय था। जो भाग्यशाली परम पुण्यात्मा ही भगवान् की पूजा करते हैं। भगवान् की पूजा के बिना पुण्य नहीं मिलता है। **एक बार भगवान् के चरण छू लो तो अनंत भव के पाप क्षय हो जाते हैं।** जैन कुल में आकर जिनेन्द्र भगवान् के दर्शन करके भी पूजा नहीं करते तो पाप का उदय समझो। ऐसे स्थान पर जहाँ धर्म की नगण्यता है, वहाँ भी भगवान् के दर्शन का सौभाग्य मिल गया, फिर भी पूजा करने के भाव नहीं तो पूर्व भव का कोई न कोई भारी पाप का उदय है। मंदिर में लोग पूजा करते हैं, धर्म प्रभावना होती है। महिलाएँ पूजा करती हैं, लेकिन पुण्य नहीं करते तो गाड़ी नहीं चलेगी, गाड़ी तो दोनों पहियों से चलती है। यदि धर्म का रथ पुरुष-महिला दोनों से चलाओ तो सही स्थान पर पहुँच जाओगे, तुम रोज करोगे तो तुम्हारे बच्चे सण्डे को करेंगे और उनके बच्चे 15 दिन में करेंगे, इसीलिए भगवानकी पूजा अभिषेक करना चाहिए। समय का सही उपयोग करना चाहिए। इधर-उधर समय निकालोगे तो पाप लगेगा, पूजा कर लोगे तो पुण्य हो जायेगा। वैसे 8 साल की उम्र से ही पूजा का नियम होना चाहिए। यहाँ कहते हैं कि माताजी पूजा, स्तुति, पाठादि याद नहीं होते हैं और दुकान घर की बातें कभी भूल नहीं पाते हैं। उपयोग की बात है। उपयोग यदि आत्म कल्याण की तरफ हो जाये तो सभी

जिसके पास है जिसको मिला है, उससे भी ज्यादा आसक्ति भाव हो सकता है। उसे ले लो उससे मिल सकता है। किस प्रकार कहाँ से पा लूँ, नहीं करता हुआ भी करने का पूरा पाप बाँध रहा है। **चौथे** – नहीं भोगते हुए भी भोगने का भाव नहीं है, ऐसे लोग होते हैं त्यागी। जिसके पास न है, न भोगने की इच्छा है, खा भी नहीं रहा है और खाने का विकल्प भी नहीं है। उसे कहीं से भी पाप नहीं लगता है। वही संसार भ्रमण से बच सकता है। संसार सागर पार करके आत्मकल्याण कर सकता है।

सबसे जघन्य कोटि का पहला वाला है, जिसका संसार भ्रमण बढ़ रहा है और यदि चौथे में आ जाए तो फिर तो आनंद ही आ जाये। भोगों की सीमा होना चाहिए बेटे की बहू आ गयी मतलब हमें नहीं करना है, ये सब मैं तो धर्मात्मा की कोटि में आती हूँ। मैं भी पहनूँ और धर्म न करने वाले भी पहने तो मुझमें और धर्मात्मा में अंतर ही क्या है? शरीर को ढ़कना है तो सीधे सामान्य से भी ढ़क सकते हैं। मन की संतुष्टि के लिए तो मन है। मन को अच्छी लग रही है दुनिया को अच्छी लगे या ना लगे। वो सुकुमाल भी भोग भोग रहा था। राजा ने भी उसकी सारी व्यवस्था देख ली थी सुकुमाल की माँ महाराज को भी मौन दिलवाकर आ गयी थी, संकोच भी नहीं था रिश्ता भी था, भैया था आखिर। महाराज ने भी मौन ले लिया था। दीपावली के बाद वर्षायोग का निष्ठापन किया – कालचक्र है घूमता है, उसका उपयोग करो तो करो, नहीं करो तो भी यह तो घूमता ही है। काल किसी का इंतजार नहीं करता है। जो काल का सही–सही उपयोग कर लेता है, वह कल्याण कर लेता है। सुख पा जाता है। उन्होंने वर्षायोग निष्ठापन के साथ ही मौन भी पूरा किया और तिलोयपण्णत्ति का पाठ वो भी 16 वें स्वर्ग के वैभव का उच्चारण करना शुरू कर दिया। आप सोचोगे भोगों के वर्णन की कहाँ आवश्यकता है? स्वर्ग के विमान में ही खाने–पीने देवांगना, बावड़ियाँ, बगीचे, क्रीड़ा स्थान, नाट्यशालादि सभी और चैत्यालय भी बने रहते हैं। भारत से बड़े–बड़े, एक–एक विमान हैं। इन सबका वर्णन यतिवृषभाचार्य ने तिलोयपण्णत्ति में ऊर्ध्वलोक के वर्णन में किया है। वैसे महाराज आध्यात्मिक पाठ करते हैं, स्तुति पाठ करते हैं, कोई वैराग्यप्रद

भावनाओं का पाठ करते हैं। लेकिन वो महाराज भोगों का वर्णन करने वाली गाथाओं का पाठ कर रहे थे, सुकुमाल अपने महल में ही 32 पत्नियों के साथ सो रहे थे, नींद में करवट ली और हल्की सी नींद खुली और गाथा के शब्द कान में पड़े। पड़ते ही जातिस्मरण हो जाता है और उन्हें वो सभी 16 वें स्वर्ग के भोग ज्ञान चक्षु से दिखने लगते हैं। ये तो दूर हैं, ये क्या हैं, मैं वहाँ तो 32 लाख भोग भोगकर आया हूँ। 32 देवाङ्गनाएँ तो स्वर्ग के सबसे छोटे देव के भी कम से कम में होती हैं। सुकुमाल सोचता है, वहाँ तो मैंने इससे भी उत्कृष्ट भोग सागरों पर्यंत भोगे हैं, निश्चिंतता से भोगे हैं, वहाँ कोई भी प्रकार की चिंता नहीं रहती है। अकालमरण होता नहीं है। 6 महीने पहले ही माला मुरझा जाती है। अतः पूरी 22 सागर की आयु तक ये भोग भोगते हैं। यहाँ तो 25–50 साल भी निश्चिंतता नहीं है। कब क्या आ जाये कौन देख ले। क्या डिस्टर्ब हो जाये। यहाँ पर खा भी ढंग से नहीं सकते हैं। खाते–खाते भी फोन आ गया। दुकान पर इंस्पेक्टर या सेल्टेक्स ऑफीसर आया है। या फिर माल आ गया है। ग्राहक इंतजार कर रहे हैं तो मुँह का ग्रास मुँह में ही रह जाता है। इतनी अशांति है। कमाते हैं पर उसका भोग नहीं कर पाते हैं, मतलब वह भी सोचता है, मैं कहाँ बिन्दु में पड़ा हूँ मैं तो समुद्र भर भोग–भोग कर आया हूँ तो भी तृप्ति नहीं हुई है। बस उठता है। अपनी पत्नियों की साड़ियों की एक रस्सी बनाता है, एक गांठ खिड़की से बाँध कर लटका देता है और उसके सहारे से नीचे उतरता है। वो जानता था कि मैं साड़ियों से उतरकर महल से बाहर नहीं जा पाऊँगा। एक भी जाग गयी तो जाना मुश्किल है। वह धीरे–धीरे चुपचाप नीचे उतरता है। सुकुमाल इतने कोमल की जिन्हें सरसों का दाना भी चुभता था। आज रत्न जरी वाली साड़ियाँ चुभ नहीं रही थीं। हाथों से खून बहने लगता है। इतना खून निकल आता है कि साड़ियों पर खून की लकीर ही बन जाती है। वैराग्य आ गया था, वैराग्य आने के बाद से सभी बातें गौण हो जाती हैं। महत्त्व नहीं रहता है। बगीचे में पहुँचते समय पैरों से खून निकलने लगा, पैर के निशान ही खून से बनने लगे। महाराज के पास पहुँचते हैं, दीक्षा के लिए कहते हैं, महाराज निमित्तज्ञानी थे, उन्होंने जान लिया इसकी आयु तीन दिन की है। भोगों से

साथ-साथ विशुद्धि भी अति आवश्यक है। यदि सुकुमाल एक बार आँख उठाकर देख लेते तो भी सियालनी कुछ नहीं कर पाती, वहीं स्थिर हो जाती। लेकिन मुनि ऋद्धि का प्रयोग अपने लिए नहीं करते हैं। आत्म ध्यान में लीन हो गये, उस समय समझ में आया कि वज्रवृषभनारच संहनन है। मन जिस काम को करने में उद्धत होता है, वह काम शीघ्र हो जाता है। यदि मन तैयार नहीं है, तो काम भी नहीं हो पाता है। मन यदि साधु बनने तैयार हो गया तो कहीं कोई कठिनाई नहीं होती है। सब सहज लगता है। भोगों की तरफ मन में कुछ भी नहीं आया भेदज्ञान चलता रहा। शरीर अलग आत्मा अलग है। ऐसे परिणामों से अपनी शुद्धात्मा को प्राप्त करके मोक्ष चले गये। उनको मेरा नमस्कार। कोई आचार्य कहते हैं कि सर्वार्थसिद्धि गये हैं, तो वो भी आकर के निश्चित मोक्ष जायेंगे। उनको भी मेरा नमस्कार।

सरलता का फल

एक सेठजी धर्मात्मा थे, भावात्मक क्रियायें सही है तो कल्याणकारी हैं। क्रियायें बाह्य हैं, अंतरङ्ग के भाव अच्छे नहीं तो मोक्षमार्ग नहीं। वे हमेशा षट् आवश्यक का पालन करते हुए धर्मात्मा जैसा जीवन-यापन कर रहे थे। बहुत सारे लोग मनुष्य पर्याय में भी तिर्यंचों-सा जीवन बिताते हैं। धर्म के बिना जीवन तिर्यंच जैसा है। कहा भी है-

धरम करत संसार सुख, धरम करत निर्वाण।
धरम पंथ साधे बिना, नर तिर्यंच समान ॥

धर्म के बिना जीवन तिर्यंच जैसा, खाने-पीने में भले ही न रहे लेकिन फल तिर्यंचों के समान ही है, घास-फूस भी नहीं खाया, मल-मूत्र जहाँ कहीं भी क्षेपण नहीं करता, सुख-सुविधायें भी हो सकती हैं, लेकिन दुर्गति तिर्यंचों जैसी ही होगी। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूप रत्नत्रय को धर्म कहा है। तीनों मिलकर मोक्ष महल में ले जाने वाले होते हैं। अकेला सम्यग्दर्शन मोक्ष नहीं ले जा सकता है। अकेला सम्यग्ज्ञान भी मोक्ष नहीं ले जा सकता है। अकेला सम्यक्चारित्र भी मोक्ष नहीं ले जा सकता है। जिस प्रकार अंधा व्यक्ति चलने की शक्ति रखता है, फिर भी गंतव्य को प्राप्त नहीं कर पाता, पंगु व्यक्ति देखते हुए भी गंतव्य को प्राप्त नहीं कर पाता, एक देखता हुआ, एक चलता हुआ भी गड्डों में गिर जाता है। दिशा सही नहीं तो भी गंतव्य पर नहीं पहुँच सकते हैं। उसी प्रकार सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीनों ही मोक्ष के मार्ग हैं। सेठ सब कुछ करता था फिर भी धर्म नहीं, दान, शील, पूजा, उपवास रूप धर्म नहीं, तो फिर धर्म क्या है? ये धर्म प्राप्ति के साधन हैं। मंदिर में जाने से धर्म हो सकता है, नहीं भी हो सकता है, लेकिन घर में रहकर कभी भी धर्म नहीं हो सकता है। घर में हर समय पाप ही पाप हैं। भोगोपभोग की सामग्री, पाँच इन्द्रियों के विषय भोग के अलावा कुछ भी नहीं। मंदिर में धर्म भजनीय है। मात्र भाव से धर्म होता है,

होता है। सेठ को प्रिय थी इसीलिए नौकर-चाकर रख लिए, यहाँ तक कि नहलाने के लिए भी नौकरानी रख दी थी। बच्चा स्कूल से आता है, माँ चाहिए। सेठजी ने बेटे को भी ननिहाल भेज दिया। कालान्तर में दूसरी पत्नि को भी लड़का हो गया, उसमें भी उतना ही अंतर था, जितना दोनों माँ में था। भविष्य दत्त में माँ-पिता दोनों के गुण थे तो उसमें माँ के पूरे अवगुण आ गये। धनाढ्य के पुत्र अधिकतर व्यसनी होते हैं। सेठ साहूकार के बेटे धन रहते हुए भी व्यसनों में न फँसे तो समझना निकट भव्य है। उनकी संगति भी ऐसी ही होती है। दोनों बड़े हो गए एक दिन नगर की महिलाओं ने ठहाका लगाया कि नाम बुद्धदत्त तो काम बुद्धु के हैं, बाप की सम्पत्ति पर ऐश करता है, **''बाप की सम्पत्ति को खाना वेश्या गमन जैसा है।''** सक्षम होने पर बाप को भी खिलाना चाहिए। बाप का धन बेटे का ही नहीं वरन् दूसरे का भी है। यह सुनकर बुद्धदत्त का दिमाग घूम गया और घर पर आकर पिताजी से कहता है मैं भी धन कमाने जाऊँगा, यह सुनकर पिताजी विफर गए। सेठ कहता है मैं तुम्हारे बिना नहीं रह पाऊँगा। बेटा अपने पास इतना है कि सात पीढ़ी तक खायें तो कम नहीं, सेठ जानता था। सेठ जानता था कि दोनों नगर के सेठों के साथ में मिलकर विदेश धन कमाने के लिए जाने लगते हैं।

सेठ दूसरा विवाह करके जीवन को कलंकित कर चुका था। संसार में धनाढ्य लोगों के ऊपर किसी का अनुशासन नहीं चलता है। उनका दुराचार धन से ढक जाता है। उनका पूर्वोपार्जित पुण्य उसे ढक देता है। पाप प्रकाश में आये बिना नहीं रह सकता, कितना भी छुपाओ। पापी के पाप का संसार में कोई विस्मय नहीं। पुण्यशाली का पाप कण मात्र भी क्यों न हो इतिहास बनता है। जैसे-सुभौम चक्रवर्ती। पाप के साथ यशकीर्ति नहीं पुण्य के साथ ही यशकीर्ति रहती है। पुण्यशाली के नाम से सभी काम हो जाते हैं। साधना, तप बहुत करता है। लेकिन पुण्य की कमी में वो दब जाता है। पुण्य के उदय में सामान्य तप वाला भी तपस्वी की कोटी में आ जाता है। क्योंकि वह परम पुण्यात्मा है। सैकड़ों ने एक वर्ष तक तप किया, लेकिन मात्र बाहुबली का ही नाम आता है। यह पुण्य है। पुण्यशाली की हर क्रिया इतिहास बनती है। पहली

पत्नी छोड़कर दूसरी ले आया, तत्काल पुण्य का उदय था। पंच भी अपने हो जाते हैं, पंचायत का कोई भी काम धनाढ्य के बिना नहीं होता, पंचों की व्यवस्था भी उसके आश्रित थी। गरीब होता तो समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता है। दुनिया के प्रत्येक क्षेत्र में रिश्वत है, लेकिन कर्म के क्षेत्र में कोई रिश्वत नहीं, मात्र है तो वो भगवान् की भक्ति, धार्मिक अनुष्ठान, पूजा विधान, परिणामों की विशुद्धि रूपी रिश्वत से ही कर्म पाप से पुण्य में परिवर्तित हो सकते हैं। दोनों लड़के अपनी-अपनी माँ से आशीष लेने जाते हैं, विदेश जा रहे, कमाने के लिए। माँ के आशीष में इतनी शक्ति होती है, कोई भी कार्य सहज हो जाते हैं। माँ कुछ भी नहीं बोले तो भी उसकी मुस्कान भरी दृष्टि से ही जीवन का उत्थान हो जाता है। बुद्धदत्त की माँ स्वरूपा कहती है, बेटा तुम जा रहे हो, लेकिन मैं दुखी हूँ, मेरा दुःख कोई नष्ट नहीं कर सकता। आप कहो मैं मिटाने का पुरुषार्थ करूँगा। चेलेन्ज दे दो तो सभी काम हो जाते हैं। वो कहता है मेरी भुजाओं में बल है, मैं आपका दुःख मिटा के रहूँगा। बेटा-भविष्यदत्त चतुर है, होशियार है, प्रत्येक काम में दक्ष है, तुम्हारी सभी सम्पत्ति वह ले लेगा, मैं उसको जीवित नहीं देखना चाहती हूँ। स्त्रियों की तुच्छ बुद्धि होती है। कायरता के भाव हैं, लक्ष्मी तो पुण्य की दासी है, पाप करने से तो और चली जाती है। पुण्यशाली के पास दौड़-दौड़ कर आती है। पापी को दौड़कर छोड़ती है। तुम सुखी रहना चाहते हो तो उसको मार देना। भविष्यदत्त भी माँ से आशीष लेने जाता है। माँ कहती है बेटा तुम जा रहे हो, मैं क्या करुँगी मुझे चिंता है तुम लौटकर नहीं आ पाओगे, क्योंकि तुम बुद्धदत्त के साथ जा रहे हो। मैंने सोचा था तुम रहोगे तो तुम्हारे साथ धार्मिक अनुष्ठान करुँगी, लेकिन तुम जा रहे हो तो तुम तीन शिक्षा को याद रखना - 1. पाँच पाप नहीं करना, व्यसनों से बचना। 2. धर्म नहीं खोना। 3.धर्म को कभी नहीं भूलना।

गाँधीजी की माँ ने भी शिक्षा दी थी। उसी के कारण (माँस, मदिरा का सेवन नहीं, परस्त्री गमन नहीं) विदेश से लौट आए भारत को स्वतंत्र कर दिया। आंदोलन तो बहुत पहले से था, लेकिन यश सभी को नहीं किसी पुण्यशाली को ही मिलता है। अहिंसा का फल है। भविष्यदत्त की माँ कहती है, बेटा शिक्षा

लिए नहीं जाता है। साधु भी 1000 चावल का एक ग्रास बने, ऐसे 32 ग्रास पुरुष, 28 ग्रास स्त्री का आहार है। सम्यग्दृष्टि दान का खाते हुए भी पापों का क्षय करता है। मिथ्यादृष्टि नहीं खाते हुए भी पाँच पाप बाँधता रहता है। सम्यग्दृष्टि निमित्त मिला, यदि कोई भूखा आ गया, मर गया, दुखी दिखा और वह भोजन छोड़ देता है। मिथ्यादृष्टि मरता हुआ, कटता हुआ, रोते हुए को भी देखता रहता है तो भी भोजन नहीं छोड़ता वरन् आनंद से खाता रहता है। सम्यग्दृष्टि के मन में भी कोई करुण क्रन्दन की बात या भयावह दृश्य याद आ जाये तो भी नहीं खाता। आसक्त भाव नहीं रहता। मिथ्यादृष्टि आँखों के सामने माँस खाते देखते हुए भी चाय पी लेता है। एक ही टोकरे में रखी लौकी, अण्डा, मछली, गिल्की भी खरीद लेता है। ग्लानि नहीं। सम्यग्दृष्टि कहता है कि रुखा-सूखा खा लूँगा, लेकिन दया नहीं छोड़ सकता। **मिथ्यात्व का चिह्न, आसक्ति।** धर्मात्मा जीवों की स्थापना वाली मिठाई आदि भी नहीं बेचता है। भविष्यदत्त भी सम्यग्दृष्टि था, भव्य था, व्रतों के प्रति बहुमान था। आसक्ति नहीं थी। निद्रा राक्षसी है। नींद में एकेन्द्रियवत हो जाता है। जिस प्रकार वृक्ष, पत्थर, जल अपना हित नहीं सोच पाते, उसी प्रकार नींद में हिताहित नहीं सोच पाता है। सोते समय कभी सम्यग्दर्शन उत्पन्न नहीं होता सम्यग्दर्शन जब भी होगा, जागते हुए को ही होगा। नींद में समय का ध्यान नहीं रहता, कब पास हो जाता है। नींद भी धर्मात्मा को ही आती है, क्योंकि साता के उदय से नींद आती है। इसी समय स्वर्गों में इन्द्र की सभा में चर्चा हो रही थी कि एक सम्यग्दृष्टि आपत्ति में है। जिसका मध्य लोक में कोई नहीं, उसके ऊर्ध्वलोक वाले तो होते हैं, क्योंकि उसके अंदर जिनेन्द्र प्रभु की भक्ति है। उसका अचौर्य व्रत है, जीवन की रक्षा कैसे? तभी एक देव आता है, देखता है कि सो रहा तो सोचता है, सोते हुए को जगाना नहीं चाहिए, क्योंकि उठते ही असाता में आता है। अपने से ज्यादा पापी को कभी भी नहीं जगाना चाहिए। उठते ही पापकर्म में लग जायेगा। देव भी सोचता है, कैसे उठाऊँ सो रहा है, दीवाल पर लिखकर चला जाता है कि यहाँ से 5 वें नंबर वाले मकान में चले जाना। जैसे ही उठता है, लिखा देखता है, क्या पता कोई मारने आया हो लेकिन नहीं, जिनालय के

पास सोया था, तो कोई कैसे मार सकता है। भगवान को याद करता है, णमोकार मंत्र पढ़ता है और भगवान् की भक्ति के साथ पंच परमेष्ठी का स्मरण करके चला जाता है। 5-6 खण्ड का महल था, सभी व्यवस्थायें थीं, लेकिन व्यवस्थापक नहीं दिख रहे थे। नगर खाली था 6 माह के बाद तो भूत आ जाते हैं, लेकिन यहाँ एक ही दिन हुआ है, क्योंकि भोजन सामग्री ताजी दिख रही है। तीसरी मंजिल पर एक सुंदर लड़की श्रृंगार कर रही थी, देखो संसारी जीव की आदत एक तरफ तो नगर उजड़ गया और एक तरफ साज सज्जा। प्राण रहते हैं, तब तक भोगों की इच्छा समाप्त नहीं होती, मौत के मुँह से आकर भी फिर व्यसनों में फँस जाते हैं, जीवन पर्यन्त जीव कोल्हू के बैल की भाँति घूमता रहता है। वह लड़की भविष्यदत्त को देखकर भाग जाती है, सोचती है, कौन आ गया, शील की रक्षा कैसे। वह आवाज लगाता है आप अपना परिचय दें, मैं परदेशी हूँ, मंदिर में संकेत मिला था, इसीलिए आया हूँ, थका हूँ, वो सोचता है इसके मन में अतिथि के प्रति आदर नहीं वहाँ जाने से क्या - भाव नहीं, आदर नहीं, न ही नेत्रों में नेह, तुलसी तहाँ न जाइये चाहे कंचन बरसे मेह.... चेहरा उदास है, जितना आँखों से बोलता उतना वचनों से नहीं, मुस्कान से प्रसन्न किया जा सकता है, आँखों से डराया भी जा सकता है, जाने लगता है, क्षमा करना आपके मन में अतिथि के प्रति आदर भाव नहीं है। बिना प्रयोजन कोई किसी के यहाँ नहीं जाता। कोई न कोई आवश्यकता जरुर होती है। वह उतरती है आवाज लगाती है कि आप अपना परिचय दें। वो मोहित हो जाती है, सोचता है मैं अकेली हूँ, उसके साथ रह जाऊँ ठीक रहेगा। वो कहती है, मैं लड़की राजा की राजकुमारी हूँ। तुमसे शादी करना चाहती हूँ। वो कहता है कि मैं बिना दिए ग्रहण नहीं कर सकता, स्वदार-संतोष व्रत है जब तक कोई विवाह नहीं करवायेगा तब तक नहीं ले सकता है। नगर मेरा है, सब मैं तुम्हें देती हूँ। **जिसको व्रतों के प्रति बहुमान है, वह चट्टान से भी कठोर हो जाता है।** सम्यग्दृष्टि दयावान होता है लेकिन नियमों में मेरु के समान अचल। तभी उसे याद आती है कि नगर उजाड़ने वाला व्यंतर आने वाला है, उसने समुद्र में नगर को डूबो दिया है यदि तुम छिप जाओगे तो बच जाओगे, वो

ही सातवाँ नरक जा सकता है। मन की गति सही दिशा में हो तो काम सही होगा, मन की गति विपरीत तो काम भी विपरीत। जब तक मन के अनुकूल साधन नहीं जुटाये जाते, तब तक कार्य की सिद्धि नहीं होती है। एक दिन वह कमरे में भी आ जाता है। बलात्कार करने लगता है। वह भक्ति करती है। तभी समुद्र की रक्षक देवी चावुक से मारती है। इतना मारती है कि चमड़ी उधड़ने लगती है। आवाज लगाती है। लेकिन कौन सुने, आधी रात में मारती है तो वह उसके चरणों में झुक जाती है और कहती है तिलकासुंदरी के चरणों में नमस्कार करो, कहता मैं तो कह रहा था, मैं चरणों का दास रहूँगा, वो और मारती है। तब संकल्प करता है कि अब मैं कुछ नहीं करूँगा। तब वह छोड़ देती है। मन अभी चंचल था, यहाँ नहीं तो वहाँ जाकर विवाह करूँगा, भविष्यदत्त को तो वापस आना नहीं है, सेठों को मैं वश में कर लूँगा। धनवान के पाप कोई नहीं बताता है। नगर में पहुँचकर मैं आ गया धन लेकर, ऐसे तो पिताजी ने भी मोती नहीं देखे होंगे। माँ-पिताजी ने सोचा इतना होशियार तो नहीं है कि इतना कमाकर ले आये। ये कौन से नगर की राजकुमारी है। उठा कर नहीं लाये, राजा ने दी तो शादी करके लाता, इतना टाइम नहीं था आप सभी की याद आ रही थी, राजा ने बात मान ली बुद्धदत्त हूँ। मोही थे माँ-बाप शादी की तैयारी करो, ज्योतिषी को बुलाया। सुख शांति से शुभ मुहूर्त में विवाह हो जाये। सातवें दिन शादी का मुहूर्त है। वो लड़की किसी से बोलती नहीं थी। किसी को देखती नहीं थी, उसका नियम था जब तक भविष्यदत्त न मिले या समाचार न मिले तब तक न खायेगी, न पियेगी। गाँव की महिलाएँ रस्में अदा करने गयीं, हल्दी लगाई तो ब्याही सी लग रही है, कोई कहती अपने को बचा लेना, अपन तो करो और चलो बाल बनाने लगी तो माथे में सिंदूर लग रहा है, यह तो ब्याही है। सब बातें करती हैं, वह सुनती रहती है, वे सभी पैसा लेकर नेंग करके चली जाती हैं। फिर भी कहती है, खोजबीन करो ऐसे राजा राजकुमारी को नहीं दे सकता। कहती कुछ नहीं, माँ कहती नई-नई है, शरमाती है। नगर में चर्चा, समाचार भविष्यदत्त की माँ तक पहुँच जाता है तब वो भी आती है। जैसे ही तिलकासुंदरी ने देखा तो सोचती अरे इसका चेहरा तो भविष्यदत्त से

मिल रहा है। हो न हो वो यही उनकी माँ है, उनसे बोलती है, सभी प्रसन्न होते हैं, बातचीत से समझ जाती है यही भविष्यदत्त की माँ है। स्वरूपा कहती दीदी यहीं रुक जाओ। आपको वो देखती है बोलती है, तो अच्छा लगता है। वो कहती है नहीं मैं यहाँ रुक तो नहीं सकती, लेकिन हाँ आती जाती रहूँगी।

संसार में अनेक प्रकार के कार्य और अनेक प्रकार के लोग होते हैं - 1. पुण्यशाली - पुण्यात्मा, 2. पुण्यशाली - पापात्मा, 3. पापी-पुण्यात्मा, 4. पापी-पापात्मा।

1. पुण्यशाली - पुण्यात्मा : पूर्व में भी पुण्य किया और अभी भी पुण्य का बंध कर रहा है। पूर्व पुण्य से वैभव, धन, सम्पत्ति, सुडोल सुंदर शरीर, हिताहित की बुद्धि मिली और उसका उपयोग सही स्थान पर, धन-दान में, शरीर से पूजा, तीर्थयात्रा, वंदना, तप करने में, बुद्धि हेय-उपादेय के विवेक में क्या करने योग्य है? अतिथि के सत्कार में पूजा करके अब पुण्य कर रहा है। पूर्व में पुण्य लेकर आया पुण्यशाली अब पुण्य कार्य कर रहा है पुण्यात्मा। उदाहरण - भरत चक्रवर्ती, तीर्थंकर, सीता -रामादि।

2. पुण्यशाली -पापात्मा : पूर्व का पुण्य है लेकिन वर्तमान में व्यसनों में फँसा है, शराब पीता है, माँस खाता है, धन का दुरुपयोग करता है, शरीर मिला, उससे अत्याचार करता है, जीवों को मारता है, पीड़ित करता है, व्यभिचार करता है, बुद्धि से अन्याय अनीति फैलाता है। वर्तमान में पुण्यशाली तो है, लेकिन भविष्य में पापी बनेगा। शरीर की शक्ति खोटे व्यसनों में लगाता है तो भविष्य निरोग नहीं हो सकता। जैसे - रावण पुण्यशाली था, लेकिन पापात्मक कार्य करके नरक गया। पूर्व पुण्य से त्रिखण्डाधिपति बना, सब अनुकूलताएँ मिलीं, लेकिन बुद्धि परस्त्री में लगा दी तो दुर्गति में गया।

जो इस भव में शरीर की शक्ति पूजा/ तीर्थ यात्रा वंदना में लगाता है तो सुरक्षित शरीर पाता है। वैयावृत्ति से वज्रवृषभनाराच संहनन मिलता। जो दूसरों की सेवा करता है, औषधि देता है, वह साता वेदनीय का बंध करता है। शरीर निरोग मिलेगा। जो जिस चीज का सदुपयोग करता है, वह बार-बार मिलती

तिलकासुंदरी को अंगूठी भेजता है। कमलश्री अंगूठी दिखाती है तो समझ जाती है कि वो आ चुके हैं। यह उन्हीं की माँ है। भविष्यदत्त राजा के पास जाता है, सब सुनाता है, न्याय होना चाहिए नहीं तो लोक में अनीति फैल जाएगी। जिसकी माँग में एक बार सिंदूर उसकी माँग में दुबारा सिंदूर नहीं भरता है। राजा बुलाता है और सेठों से पूछता है तो सभी नहीं बताते है, लेकिन चेहरे से लग रहा था कुछ और है। राजा अभयदान देता है तो सभी बात खुलती है। अंदर की बात चेहरे पर आ जाती है। पोल खुल जाती है। बुद्धदत्त तिरष्कृत हो जाता है, कहता है मेरी माँ का आदेश था कि भविष्यदत्त को मारना तभी हमें सुख शांति मिलेगी, लेकिन वो पुण्यशाली था। मरा नहीं है, सभी उससे क्षमा माँगते है तो भविष्यदत्त सहज रूप से सबको क्षमा कर देता है। स्वरूपा को सजा मिलती है। काला मुँह करके देश निकाला मिलता है। राजा अपनी राजकुमारी को भविष्यदत्त को ब्याह देता है। तिलकासुंदरी सोचती है, सौत तो आये, हम दीक्षा ले लेंगे। तिलकासुंदरी विचार करती है। इधर जब बहुत दिन हो जाते हैं, तब भविष्यदत्त को विचार आता है कि तिलका इतनी उदास क्यों, साध्वी जैसे कैसे रहती है? माँ से कहते हैं, माँ कहती है पूँछूगी माँ भी चतुराई से उससे पूछ रही है।

एक व्यक्ति 4 व्यक्तियों को लेकर राजा के पास पहुँचता है – 1. भिखारी, 2. पुजारी, 3. साधु, 4. राजा। राजा से कहता है संसार में चार के अलावा कोई नहीं। राजा कहता है, ऐसा कैसे कि चार ही जीव में संसार के जीवों की सभी क्वालिटी सिद्ध हो जाती है। यदि सिद्ध नहीं किया तो फाँसी की सजा। क्योंकि तुम बिना बुलाये बिना कहे ही लेकर आये हो, वो कहता है, जैसी आपकी आज्ञा – **भिखारी** – यह तब का भी नहीं है और अब का भी नहीं है। पूर्व भव में पुण्य नहीं किया, पूजन नहीं की, दान नहीं दिया, शील का पालन नहीं किया तो भिखारी बना। अभी भी कोई धर्म नहीं करता, सदाचार से नहीं रहता, पाप कर रहा है तो अब का भी नहीं था। धन की जड़ धर्म है। धर्म रूपी बीज बोये तो उसका पालन–पोषण करो, सुरक्षित रखो भले ही पुरुषार्थ न कर पाओ। **पुजारी** – सिर पर तिलक, हाथ में माला, पोशाक धोती दुपट्टा, यह

तब का तो नहीं अब का है। पूर्वभव में पुण्य नहीं किया, दान नहीं दिया तो दरिद्री बना लेकिन अब धर्म कर रहा है। खान–पान, रहन–सहन की व्यवस्था नहीं फिर भी धार्मिक अनुष्ठान को नहीं छोड़ता। अनंतानुबंधी लोभ वाला धार्मिक कार्यक्रम में दुकान खोलकर बैठता है। आगे से बंद कर देगा तो पीछे से करता रहेगा। परम लोभी है यदि सामाजिक व्यवस्था के लिए करता है तो बात अलग है। जैसे –दूध, सब्जी, मेडिकल आदि दया दृष्टि से करता है तो धर्म है। वह पुजारी अब पहले देवपूजा फिर काम दूजा, लेकिन आजकल तो पहले पेट पूजा बाद में देवपूजा। इतना गरीब होने के बाद भी तब का तो नहीं था लेकिन अब का था। दुकान तभी खोलता जब जिनेन्द्र भगवानकी पूजा कर लेता है। इसीलिए अब का था।

आज भी दक्षिण में पुरुष महिलाएँ खेत पर काम करने जाती तो पहले जिनेन्द्र पूजा करती शाम के भोजन की व्यवस्था करती, क्योंकि लौटते समय संध्या हो जाएगी और रात्रि भोजन नहीं करना। वहाँ के लोग इतने गरीब कि खेत पर काम करते हैं, फिर भी धर्म नहीं छोड़ते। व्यक्तित्व सही एवं कर्त्तव्य पालन सही तो दुकान अच्छी चलती है। पुजारी भविष्य में दुखी नहीं होगा। सुख शांति मिलेगी। **साधु** – राजघराने का राजकुमार था, पूर्व भव में अहिंसा पाली थी, उसका फल है। तब का भी और अब का भी है। परिहारविशुद्धि चारित्र उसी के होता है, जो 30 वर्ष तक सुख से घर में रहता है। कण मात्र भी प्रतिकूलता नहीं होती, पूर्व में इतना पुण्य किया, तप किया, धर्म किया उसका प्रतिफल। शादी करके गृहस्थी के सुख भी भोगता है। सांसारिक सुख में सबसे बड़ा सुख पत्नी का। एक बार भी सिर दुःख गया तो यह चारित्र नहीं होता है। चक्रवर्ती का पुण्य 96000 रानियाँ सुंदरी, आज्ञाकारिणी कोई कभी रुठती नहीं, क्योंकि तब का पुण्य है, अब भी धर्म करता है। संसारी आत्मा के मन में कब कैसे भाव आ जायें, कुछ नहीं कह सकते, पापी हमेशा पापी नहीं रहता। अंजनचोर भी तप करके मोक्ष चला गया। पूर्व का पुण्य अब तपस्या कर रहा, फिर मोक्ष सुख मिलेगा। **राजा** –राजा जैसी विभूति मिली, धन, बुद्धि, सभी वैभव सुख सुविधायें प्राप्त हुई, लेकिन अब शराब पीने लगा, व्यसन करने लगा, घर के